॥ ओ३म् ॥

सोम का वैदिक स्वरुप

SPECIAL SUPPLEMENT

JOURNAL OF INTERNATIONAL DAYANANDA VEDAPEETHA

VOL. XI NO. 2 JUNE 1998.

सम्पादक

डॉ. धर्मवीर

प्रकाशक

अन्तर् राष्ट्रीय दयानन्द वेद पीठ

नई दिल्ली

।। ओ३म् ।।

सोम का वैदिक स्वरुप

SPECIAL SUPPLEMENT

JOURNAL OF INTERNATIONAL DAYANANDA VEDAPEETHA

VOL. XI NO. 2 JUNE 1998.

सम्पादक

डॉ. धर्मवीर

प्रकाशक

अन्तर् राष्ट्रीय दयानन्द वेद पीठ

नई दिल्ली

सोम का वैदिक स्वरुप

सम्पादक : डॉ. धर्मवीर

प्रकाशक : अन्तर् राष्ट्रीय दयानन्द
वेद पीठ नई दिल्ली

मूल्य : रु. ५०.०० पचास रुपये

मुद्रक : वैदिक यन्त्रालय,
केसरगंज, अजमेर—३०५००१

विषय सूची

सोम और सुरा

प्राय: आधुनिक लोग और ऐसे विद्वान भी जो संस्कृत साहित्य और वैदिक साहित्य से अपरिचित है वे I शब्दों की आत्मा से अपरिचित होने के कारण अर्थों को इस प्रकार व्याख्यात करते हैं, जिससे अर्थ-अनर्थ हो जाता है। हमें यह जानना चाहिए कि एक शब्द के अनेक अर्थ सदा से ही होते आये हैं और ऐसा होना भाषा का स्वाभाविक गुण है। यह भाषा की विशेषता है, कम शब्दों से अधिक कार्य सिद्धि तभी संभव है जब शब्द अनेक अर्थों को दे सकता हो। शब्दों की इस विशेषता के कारण ही शब्दों के अर्थों का निश्चय करने के लिए भाषा-सम्बंधी शास्त्रों का निर्माण हुआ है। अर्थों के निश्चय करने का सबसे स्थूल और प्राथमिक साधन व्याकरण होता है। व्याकरण भी तभी उपयोगी हो सकता है, जब हमें पहले से अर्थों का बोध हो, शब्दार्थ का बोध होने पर ही शब्द में प्रकृति प्रत्यय की विवेचना की जा सकती है इस विवेचना से किए जाने वाले अर्थ का निश्चय होता है। अर्थ की मुख्यता के कारण ही जहां पर व्याकरण शास्त्र की सीमाएं समाप्त होती हैं, वहाँ से साहित्य का प्रारम्भ होता है। इसलिए व्याकरण सम्मत अर्थ पीछे छूटता हुआ, दिखाई देता है और उसके स्थान पर प्रसंगत अर्थ की मुख्यता हो जाती है। इस अर्थ मुख्यता का विनिश्चय करने के लिए साहित्य में शब्द शक्तियों का प्रदुर्भाव हुआ है। शब्द-शक्तियों के द्वारा अभिप्रेत अर्थ की प्रतीति होती है। इस प्रकार शब्द में अनेक अर्थ होना स्पष्ट है। अनेक अर्थों में से उचित अर्थ का चयन करने की योग्यता कवित्व की श्रेष्ठता की कसौटी है।

जहां व्याकरण शब्दार्थ का बोध कराता है परन्तु उसके गम्भीर अर्थ का बोध कराने के लिए व्याकरण से भी पुराने शास्त्र की उपस्थिति देखने में आती है। जहां शब्दों के अनेक अर्थ होते हैं, वही एक शब्द से अनेक पदार्थों की प्रतीति भी होती है। जिस प्रकार व्याकरण के अर्थों को साहित्य के द्वारा अन्य अर्थों के लिए प्रयुक्त किया जाता है, उसी प्रकार एक शब्द का अनेक पदार्थों में प्रयुक्त किए जाने के लिए जिस शास्त्र की रचना की गई है, उसे निरुक्त कहते हैं। निरुक्त शास्त्र शब्द के माध्यम से उचित पदार्थ तक पहुंचने की प्रक्रिया का नाम है। वेद में एक शब्द अनेक पदार्थों का वाचक जिन कारणों से होता है, उसको यौगिकवाद कहा जाता है। इस यौगिकवाद से प्रत्येक पदार्थ के और उसके वाचक शब्दों के बीच के सम्बन्ध को जाना जा सकता है क्योंकि भिन्न-भिन्न पदार्थों के मध्य गुणसाम्यता के कारण ही एक शब्द अनेक पदार्थों का वाचक बनता है। यही समानता शब्द के वास्तविक

अर्थ तक पहुंचने में सहायता करती है इस कारण निरूक्त शास्त्र का मत है कि पदार्थ को मुख्य मानकर ही शब्द का विश्लेषण किया जाना चाहिए। और शब्द के विश्लेषण की प्रक्रिया वहां तक जारी रहनी चाहिए, जब तक वह शब्द वास्तविक पदार्थ से स्पष्ट न कर दे। हमारा अभिप्रेत पदार्थ वास्तविक है और इसकी कसौटी होती है—'शब्द प्रयोग का प्रकरण या प्रसंग।' कोई भी अर्थ कितना भी व्याकरण सम्मत क्यों न हो प्रसंग से यदि विपरीत है तो वह अर्थग्राह्य नहीं हो सकता है। इसलिए जिस प्रकार सभी साधन लक्ष्यानुगामी होने पर ही उद्देश्य को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। उसी प्रकार शब्दों का प्रसंगानुसार अर्थ ही शास्त्र के रहस्य व आत्मा को स्पष्ट कर सकता है। इसी कारण सोम या सुरा शब्द में जो समानता है, उस समानता की भूल से दोनों को एक समझ लिया जाता है। जहां सोम और सुरा में दोनों का आसवन होना, दोनों का रस रूप होना समान है, परन्तु, गुणों और परिणामों की भिन्नता के कारण वे एक दूसरे से भिन्न ही नहीं अपितु, एक दूसरे से विपरीत भी हैं। यही प्रतिपादित करना हमारे प्रस्तुत निबन्धों का विषय है। शास्त्रों में जहां यज्ञों में सोम के पानका अनेकशः विधान है, वहीं पर सुरापान का निषेध भी। शरीर पर और संसार पर जो पदार्थ अनेक स्वभाव से सौम्यता उत्पन्न करते है, उनपदार्थो को सोम कहा गया है और जो पदार्थ प्रकृति और शरीर में चञ्चलता, क्रोध, अशान्ति, झूठ या अविवेक उत्पन्न करते हैं, उन्हें सुरा कहा गया है। समान गुणों के कारण जहां अनेक पदार्थों को संज्ञा सोम है उसी प्रकार समान गुणों के कारण सुरा भी अनेक प्रकार की व अनेक पदार्थों से निर्मित हो सकती है। प्रसंग की भिन्नता से सोम शरीर की धातुओं का, ज्ञान व बुद्धि का, भक्ति या आनंद का भी वाचक है। इसलिए सोम अपने यौगिक गुण के कारण अनेक प्रकार का होने पर भी प्रसंग से उसी सौम्य परिणाम का द्योतक है और इसके विपरीत गुणों की वस्तु को सुरा कहा गया हैं। शतपथ ब्राह्मण के पञ्चम काण्ड में सोम को सत्ययश श्री ज्योति आदि का वाचक कहा गया है तथा सुराको झूठ, पाप, तम का। इस प्रकार सोम और सुरा कुछ समान होने पर भी परिणामत, बहुत भिन्न पदार्थ हैं। इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में पुरुष को सोम तथा स्त्री को सुरा कहा है यह कथन सोम और सुरा के पार्थक्य का प्रतिपादन करने के लिए है।

सोम ऐसा वैदिक शब्द है जिसका ठीक अर्थ न समझने से वेद का अर्थ समझना कठिन है। वैदिक देवताओं में सोम एक प्रमुख देवता है। जिस प्रकार दूसरे देवताओं के ज्ञान से ही उन मन्त्रों का अर्थ विदित होता है उसी प्रकार सोम देवता को समझकर सोम देवता के मन्त्रों को समझा जा सकता है। ऋग्वेद का नवम मण्डल सोम देवता का है। सामवेद के आग्नेय, ऐन्द्र काण्ड की भांति सोमकाण्ड में बहुत से मन्त्रों का संग्रह है। सोम को पवमान कहा गया है सोम का पवित्रता से सात्विकता से सम्बन्ध है। इस प्रकार चाहे वेद के मन्त्र हों या ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रसंग, अथवा चिकित्सा, व धर्म शास्त्र के सन्दर्भ सब को मिला कर देखने से ही सोम का

वास्तविक स्वरूप हमारी समझ में आ सकता है। केवल कल्पना से सोम को सुरा मान लेने से वेदार्थ करना संभव नहीं है।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए ही वेदगोष्ठी के आयोजकों ने इस वर्ष इस विषय पर विद्वानों के विचार जानने का निश्चय किया था परिणाम स्वरूप विद्वानों ने अपने ज्ञान और परिश्रम से सोम के वैदिक स्वरूप को विज्ञ पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। हमें पूर्ण विश्वास है विद्वानों का यह प्रयास अपने आलोक से गहन अन्धकार में भी पाठको का पथ प्रशस्त करेगा।

सभी विद्वानों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना हमारा पवित्र कर्तव्य समझते हैं जिन्होंने हमारे निवेदन को स्वीकार करके अपने शोधपूर्ण विचार प्रेषित करने की कृपा की।

—धर्मवीर

सोम और सुरा

—डॉ० ज्वलन्त कुमार शास्त्री

यजुर्वेद के (१९।७) इस मन्त्र में सोम और सुरा दोनों की एक साथ चर्चा है—

नाना हि वां देवहितꣳसदस्कृतं मा सꣳसृक्षाथां परमे व्योमन् ।
सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम एष मा मा हिꣳसीः स्वां योनिमाविशन्ती ।।

अर्थ—हे सोम और सुरा ! देव ने तुम दोनों के लिए इस समस्त लोक में (इमे वै लोको परमं व्योम) (७।५।२७८) पृथक्-पृथक् स्थान निश्चित कर रखा है । तुम कहीं भी परस्पर एकत्र मत होओ (मा संसृक्षाताम्) । अर्थात्—तुम्हारे अन्दर कोई संसर्ग नहीं होना चाहिए । हे सुरा ! तुम शोषण करने वाली (शुष्मिणी) हो किन्तु यह सोम तुमसे सर्वथा भिन्न आर्द्र शान्तिप्रद है ।

वाजसनेयि माध्यन्दिन याजुष् शतपथ ब्राह्मण में भी स्पष्टतः सोम और सुरा में पृथक्ता बताई गई है—

क्षत्रम्वै पयोग्रहाः विट् सुराग्रहाः । (शत. १२.७.३)

अर्थात् दूध भरा पात्र क्षत्रिय है और सुरा के प्याले साधारण प्रजा हैं । यहाँ पयोग्रह और सुराग्रह दोनों परस्पर विरोधी तत्त्व है, इसको आगे और स्पष्ट किया गया है—(१) पयोग्रह प्राण है—सुराग्रह शरीर है । (२) पयोग्रह सोम है—सुराग्रह अन्न है । (३) पयोग्रह ग्राम्य पशु है—सुराग्रह वन्य पशु है ।

सुरा का प्रभाव—शतपथ १२।७।३।२० में 'सुराम्पीत्वा रौद्रमनाः भवति' अर्थात् शराब पीकर मनुष्य का मन रौद्र हो जाता है । दूध अथवा सोम पीकर रौद्र मन का होना कहीं नहीं कहा गया । सोम को रुद्र का विरोधी कहा है—

'प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम । (ऋ. ७।४१।१)

इन दोनों का स्पष्टतः पार्थक्य शतपथ काण्ड-५, अध्याय १, ब्राह्मण २, कण्डिका १० में बताया गया—'सत्यं यशः श्री ज्योतिः सोमोऽनृतं पाप्मा तमः सुरा । अर्थात् (१) सोम सत्य, यश, श्री और ज्योति का प्रतीक है । (२) सुरा अनृत (झूठ)

पाप और अन्धकार का प्रतीक है। इसलिए ऋग्वेद में यह कहा गया है—युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम् (ऋ ८।२।१२)। अर्थात् शराब पीकर लोग दुर्मद होकर आपस में लड़ते हैं। यह दुर्मद शब्द सोम अथवा दूध के लिए सारे वैदिक वाङ्मय में कहीं नहीं आया।

सोम के अनेक अर्थ—अन्नं वै सोमः। रेतो वै सोमः। आयुर्वेद के मतानुसार वीर्य ऊर्ध्वगति करता हुआ सूक्ष्म होता हुआ 'ओज' नाम को धारण करता है जिसके बिन्दुनाश से मरण की सम्भावना दर्शाई है। 'मरणं विन्दुपातेन जीवनं विन्दुधारणात्।'

सोम ओषधीनाम् अधिपतिः। पारस्कर गृह्यसूत्र (१।५।१०) इसका समर्थन जन्दावस्था भाग—१ पृष्ठ ६९ पर डारमेस्टेटर के कथन से भी होता है—'सोम या होम के अन्तर्गत समस्त प्रकार की वनस्पतियों की जीवनी शक्ति का समावेश होता है।' आगे चलकर सोमलता या गिलोय नामक वनस्पति विशेष को 'सोम' शब्द से अभिहित किया गया। पं. रघुनन्दन शर्मा का कहना है कि 'याज्ञिक काल में जिस प्रकार पशुओं का यज्ञों में वध होने लगा, उसी प्रकार सोमरस के नाम से किसी नशीली चीज का प्रयोग होने लगा।' (वैदिक सम्पत्ति, पृष्ठ १०६)। वस्तुतः वेदों में वनस्पति रूप में वर्णित सोम (यथा—त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे। प्रियस्तोत्रो **वनस्पतिः** ऋ. १।९१।६) समस्त वनस्पतियों का सार तत्त्व, सभी वृक्षों की आत्मा है। यह पृथिवी के वनस्पतियों का पोषक, स्वामी और उनमें सौम्य भाव लाने वाला औषधिराज है। वनस्पति की जीवनी शक्ति चन्द्रमा के अधीन है। इसी सन्दर्भ में **सोम** को चन्द्रमा भी कहा गया है—'एतद्वै देवसोमं यच्चन्द्रमाः' (ऐतरेय ब्राह्मण ७।११।८)। अर्थात् यही देवताओं का सोम है जो चन्द्रमा है। क्योंकि कहा गया है कि सोम पहले देवलोक-स्वर्ग लोक में था—'दिवि सोमोऽधिश्रितः।' ब्राह्मण वाक्य है—'दिवि वै सोम आसीत्' अर्थात् यह सोम पहले स्वर्ग में था। वहाँ से उसको पृथिवी पर लाये। इस सोम को गरुड़ और श्येन स्वर्ग से लाते हैं। गरुड़ और श्येन सूर्य की किरणें हैं। सोम का सौम्य गुण औषधियों में पड़ता है, यही स्वर्ग से गरुड़ और श्येन द्वारा उसका आना है। अतः सुश्रुत-चिकित्सा-स्थान अध्याय २९ में सोम के 'अंशुमान् मुञ्जवान् चैव चन्द्रमा रजतप्रभः' आदि अनेक नाम बताये गये हैं। 'सोम' का चन्द्र अर्थ वैदिक साहित्य और संस्कृत साहित्य में समान रूप से प्रसिद्ध है यथा—सोमांशु। उणादिकोष—'अर्त्ति स्तुसुहुसृधृक्षिक्षुभायावापदियक्षिनीभ्यो मन् (१।१४०) के उदाहरण सोमः की व्याख्या में ऋषि दयानन्द ने 'सवत्यैश्वर्यहेतुर्भवतीति सोमः कर्पूरश्चन्द्रमा वा' लिखा है। सोम का चन्द्र अर्थ के आलोक में शतपथ १।६।३।२३ के 'यच्छुष्कम् तदाग्नेयम् यदार्द्रम् तत् सोम्यम्' अर्थात्—जो शुष्क है वह आग्नेय है और जो आर्द्र है वह सोम्य है, इस वचन की सङ्गति लग जाती है। क्योंकि चन्द्रमा की आर्द्रता, शीतलता, रसवत्ता प्रत्यक्ष है।

अतः अधिदेव में यह सोम जलों का वह सूक्ष्मतम भाग है जो सूर्य किरणों द्वारा सूर्य तक पहुँचता है। या चन्द्रप्रभा द्वारा औषधियों में पहुँचता है—अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा। अग्निं च विश्वशंभुवम् आपश्च विश्वभेषजीः (ऋ. १।२३।२०, अथर्व. १।५।६)। सुश्रुत में सोम के लिए एक नाम 'मूजवान्' भी आया है। ऋग्वेद १०।३४।१ में 'सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो.' मन्त्र है। इस सन्दर्भ में यह ध्यातव्य है कि वेदों में एक आकाशीय संसार भी है। पृथ्वी में ऐसा एक भी पदार्थ नहीं जो वहाँ न हो। उन्हीं पदार्थों के नामों से ही पृथ्वी के पदार्थों का नामकरण हुआ है। इन्द्रवृत्र का युद्ध सूर्य-मेघ का युद्ध है जिसे पढ़कर भूमि में लड़ने वाले दो राजाओं का भ्रम हुआ है। वही स्थिति वेद के 'मौजवत' की प्रकृति 'मूजवान्' पृथ्वी पर कहीं नहीं यह आकाश में है क्योंकि 'दिवि वै सोम आसीत्।' देवतरु कल्पवृक्ष के समान ही यह आकाश का वृक्ष है। वेदों में गौवों तथा अश्वों अर्थात् किरणों का निवास '**व्रज**' तथा '**अर्व**' बताया गया है जिसके आधार पर अधिभूत में गौ और अश्व पशु का निवास व्रज, व्रजभूमि और अर्व (अश्व) नामकरण किया गया। इसी प्रकार आकाशीय सोम का निवास स्थान 'मूजवान्' के आधार पर अधिभौतिक सोम वनस्पति का निवास 'मूजवान् पर्वतो' (निरुक्त) मूजवान् पर्वत विशेष माना जाने लगा।

'सोम' का वेदवेत्ता, सत्यनिष्ठ नीरक्षीरविवेकी ब्राह्मण अर्थ—

(१) 'सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा' (यजु. १०।१८)।

(२) 'सोम राजन् प्रण आयूंषि तारीरहानीव सूर्यो वासराणि'

(ऋ. ८।४८।७)

अर्थ—हे विप्रराज सोम! हमारी आयुओं को भवसागर में पार उतार, जैसे सूर्य दिनों को प्रकाशित करता है।

(३) 'सोम राजन् मृडया नः स्वस्ति तव स्मसि व्रत्यास्तस्य विद्धि'

(ऋ. ८।४८।८)

अर्थ—हे विप्रराज सोम! हमें सुखी बना, हमारा कल्याण कर, यह मत भूल कि हम तेरे व्रती हैं।

(४) 'सोमं मन्यते पपिवान् यत् सम्पिषन्त्योषधिम्।
सोमं यं ब्रह्मणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन॥ (ऋ. १०।८५।३)

अर्थ—देखो तो इसको लोग सोम नामक औषधि का रस पीस कर लाये हैं और यह समझा है कि मैंने सोम रस पी लिया। वस्तुतः उस सोम को वेदवेत्ता ब्राह्मण जानते हैं, उसे कोई (स्थूल बुद्धि) मनुष्य नहीं पा सकता।

(५) सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत् सत्यं यतरद् ऋजीयस्तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत्॥

(ऋ. ७।१०४।१२)

अर्थ—उत्तम विज्ञान के संसार में निवास करने वाले विद्वज्जन के सामने सत् और असत् दोनों वचन अपना विवाद लेकर उपस्थित होते हैं। सवनकर्त्ता विद्वान् (सोम) उनमें से जो सत्य हो और यदि एक प्रश्न के दो समाधान हों तो उनमें से ऋजुतर हो, उसे बचा लेता है तथा दूसरे को हृतप्रभ कर देता है।

अध्यात्म में—सोम का अर्थ **'भक्तिरस'**—अध्यात्म में सोम दिव्य आनन्द का प्रतीक है। श्री अरविन्द कहते हैं—'सोमरस उस आनन्द की मस्ती का, सत्ता के दिव्य आनन्द का प्रतिनिधि है जो ऋत या सत्य के बीच में से होकर अतिमानस् चेतना से मन में प्रवाहित होता है।' (वेदरहस्य, पृ. ९५)। "**सोम, अध्यात्म** में ओज है जो मस्तिष्क में ब्रह्मगुहा में क्षरित होता है। इसी का माहात्म्य ऋग्वेद के सम्पूर्ण नवम मण्डल में वर्णित है। अध्यात्म और आधिदैविक सोमों का प्रतिनिधि यज्ञ में सोमवल्ली नामक औषधि विशेष है"—पं. युधिष्ठिर मीमांसक। यज्ञ में सोमपान के सम्बन्ध में प्रो. मैक्डॉनल और कीथ का निष्कर्ष यह है—"इस बात का निर्णय करना कि याजकीय पेय के विपरीत सोम कभी प्रचलित पेय भी था, अत्यन्त कठिन है। इसकी वास्तविक लोकप्रियता के सम्बन्ध में प्रमाण अत्यन्त कम और अनिर्णायक है।" (वैदिक इण्डेक्स, भाग-२, पृष्ठ ५३१, हिन्दी अनुवाद)।

जन समाज में सोम और सुरा की क्या स्थिति थी ? इस सम्बन्ध में प्रचलित लौकिक शब्दों से कुछ प्रकाश पड़ सकता है। इसी सन्दर्भ में ईस्वी पूर्व भारतीय समाज में सोम और सुरा की वास्तविक स्थिति और मान्यता का अभिज्ञान पाणिनि और पतञ्जलि के अष्टाध्यायी और महाभाष्य से होता है। पतञ्जलि की अपर सीमा ईस्वी पूर्व १५० के पश्चात् नहीं हो सकती यह निर्विवाद है।

सोम—सोमपान की अर्हता रखने वाला 'सोम्य' कहलाता था—सोममर्हति यः (४।४।१३७)। भाष्यकार पतञ्जलि ने लिखा है—एवं हि याज्ञिकाः पठन्ति दश पुरुषानूकं यस्य गृहे शूद्रा न विद्येरन् स सोमं पिबेदिति, भाष्य ४।१।९३ अर्थात्-याज्ञिक यह मानते हैं कि जिसके कुल में दस पीढ़ी पहले तक आचार पर कोई आँच न आई हो वह सोमपान का अधिकारी होता है। सोमयाग में सोम नामक ओषधि की आवश्यकता पड़ती थी। पतञ्जलि ने पूतीक या कुशा को सोम का प्रतिनिधि लिखा है, साथ ही कहा है कि इससे यह न समझना चाहिए कि सोम गई-बीती वस्तु हो गई (न च तत्र सोमो भूत पूर्वो भवति, १।१।५६, भाष्य)। कर्मणीनिर्विक्रियः ३।२।९३ पर काशिकाकार सोमविक्रयी, रसविक्रयी दो उदाहरण कुत्सानिमित्तं कर्म के दिये हैं जिससे यह विदित होता है कि इनका बेचना अच्छा नहीं समझा जाता था। मनु ने सोम और दूध इत्यादि रसों का विक्रय करना निषिद्ध माना है (मनु. १०।८६-८९)।

सुरा—पाणिनि के 'पानं देशे' (८।४।९) सूत्र पर काशिका में ४-चार उदाहरण दिये हैं, जिससे इस सूत्र की पृष्ठभूमि रोचक हो जाती है। क्षीरपाणा उशीनराः— शिबि-उशीनर जहाँ आज झंगमघियाना, पाकपत्तन और मुलतान का इलाका है। यहाँ की दुधार साहीवाल गाएँ उत्तरी भारत में विख्यात हैं। चनाब से लेकर सिन्धु नद तक का प्रदेश दुग्ध-पान के लिए प्राचीन काल में प्रसिद्ध था, और आज भी है। सुरापाणाः प्राच्याः, सौवीरपाणाः बाल्हीकाः, कषायपाणाः गन्धाराः। चरक के अनुसार प्राच्य जनपद में मत्स्यभोजन, सिन्धु जनपद में क्षीरभोजन, बाल्हीक (बल्ख), शूलिक (काशगर) और चीन के लोगों में माध्वीक या अंगूरी शराब पीने का आम रिवाज था (चिकित्सा स्थान ३०।३१७)। वाहीक मद्रदेश को कहते हैं। सौवीर या काँजी एक प्रकार की सुरा थी जो मद्रदेश में प्रिय थी। मद्रदेश की स्त्रियों के लिए महाभारत 'कर्णपर्व' में लिखा है—'पुत्रं दद्यां पतिं दद्यां न तु दद्यां सुवीरकम्' (२७।८७-८८)।

भाष्यकार ने आक्षेप-भाष्य में प्रमत्तगीत कहकर भ्राजश्लोक के नाम से पूर्व पक्षी का कथन उपस्थित किया है—उदुम्बर वर्ण की अनेक सुराभरी घटी पी जाने पर भी यदि कोई स्वर्ग नहीं जाता तो सौत्रामणि यज्ञ में थोड़ी सी पीने से स्वर्ग कैसे जा सकता है? (यदुदुम्बर वर्णानां घटीनां मण्डलं महत्। पीतं न गमयेत् स्वर्गं तत्किं क्रतुगतं नयेत्—पस्पशाह्निक)। यह कथन इस बात का प्रमाण है कि श्रोत्रिय लोग सौत्रामणि क्रतु (यज्ञ) में सुरा पीना अधर्म नहीं समझते थे। सुरा केवल सौत्रामणि यज्ञ में विहित थी। पतञ्जलि ने ब्राह्मण वध और सुरापान को महान् दोषावह कहा है—'ब्राह्मणवधे सुरापाने च महान् दोष उक्तः (६।१।८४ भाष्य)। भाष्यकार कहते हैं कि जो व्यक्ति अनजान में भी ब्राह्मण को मारता है या सुरापीता है वह भी पतित हो जाता है—'यो ह्यजानन् वै ब्राह्मणं हन्यात् सुरां वा पिबेत् सोऽपि मन्ये पतितः—स्यात्' (आह्निक-१)।

रीडर—संस्कृत विभाग, रणवीर रणञ्जय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय—अमेठी

वेद में सोम महर्षि दयानन्द की दृष्टि में

—आचार्य डा. सत्यव्रत राजेश

वेद में सोम क्या तत्त्व है. यह अन्वेषण का विषय है ? वेद-तत्त्व से अनभिज्ञ कतिपय पाश्चात्य तथा पौर्वात्य विद्वानों ने कुछ विशेषणों के आधार पर सोम के स्वरूप की कल्पना की है । उन्होंने ऋ. ९.११३.२ में सोम का एक विशेषण "विरुधां पते" देख कर उसे लता मान लिया । ऋग्वेद ९.९७.३३ तथा अथर्ववेद ३.५.४ में 'सोमस्य पर्णः' देखा तो सोम के पत्ते मान लिए । ऋग्वेद ३.५३.१४ में 'नैचाशाखः' को सोम का विशेषण मान कर हिल्लेब्राण्ट ने उसकी टहनी तथा पत्तों को नीचे की ओर झुका बता दिया । ऋग्वेद ९.६२.३० में सोम के लिए—"या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे" तथा ऋ. ९.९०.३ में—"तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा" भीम और तिग्म—तेज आयुध देख यह अनुमान लगा लिया कि सम्भव है सोमलता पर कांटे भी हों । ऋ. ९.७९.४ में —"पृथिव्यास्ते रुरुहुः सानवि क्षिपः ।" में 'क्षिपः' शब्द को देख कर तथा ऋ. ९.८०.४ में "सहस्रधारं दुहते दश क्षिपः" में दशक्षिपः का अर्थ दस अंगुलि देख कर सोम के पत्ते अंगुलि जैसे मान लिए । उसके काण्डों की भी अंगुलि जैसे होने की कल्पना की । ऋ. ९.४०.२ में 'अरुणः' पद देख कर उसे अरुण रंग का मान लिया । हरित, बभ्रु, हरि, पिंगल, शोण आदि विशेषण देख कर उसके रंग की कल्पना कर ली । यस्ते मदो वरेण्यः[1] । आदि स्थलों को देख कर उसे मादक मान लिया गया । कुछ विद्वान् तो इसे भांग भी बतलाते हैं ।[2] हिल्लेब्राण्ट ने इसे चन्द्रमा भी कहा है । राजेन्द्र लाल मित्र ने इसे यव-सुरा में काम आने वाला कोई पदार्थ माना है । वाट के अनुसार अफ़ग़ानी द्राक्षा ही सोम है । राइस इसे इक्षु (ईख) बतलाता है ।[3]

इस प्रकार सोम के विषय में विद्वानों के अनेक मत हैं । किन्तु ये सभी मत एकांगी हैं । सोम एक लता भी है इससे किसी का वैमत्य नहीं है । किन्तु जब यह मान लिया जाता है कि सोम केवल एक ओषधि ही थी तब वैदिक विद्वान् इससे सहमत नहीं हो सकते । क्योंकि ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में कहा है कि 'पीने

---

१. साम. सोमकाण्ड मं. ४ ।

२. द्र. वैदिककोश-सूर्यकान्त, पृ. ५७२

३. वही, पृ. ५७३

वाले उसे ही सोम समझते हैं' जिस ओषधि को पीसा जाता है। किन्तु ब्रह्मज्ञानी जिस सोम को जानते हैं उसे कोई पार्थिव नहीं जान सकता।[1]

यहाँ स्पष्ट ही जहाँ सोम उस ओषधि को माना है जिसे कूट पीस कर पिया जाता है वहाँ उस तत्त्व को भी सोम कहा है जिसे केवल ब्राह्मज्ञानी वेदज्ञ ही जानते हैं तथा पार्थिव भोगों में आसक्त पुरुष उसका सेवन नहीं कर सकता। वेद के अन्य भी अनेक स्थलों पर ऐसे संकेत मिलते हैं जिससे सोम को ओषधि माना जा सकता है। सामवेद के उपासना ग्रन्थ होने से अनेक विद्वानों ने वहाँ पवमान काण्ड में आए सोम का अर्थ ब्रह्मचर्य, ईश्वर भक्ति तथा परमेश्वर किया है। यह युक्त भी है, किन्तु ऋग्वेद आदि में आए सोम के उल्लेख से सोमो वीरुधां पतिः[2], हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन।[3] सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः।[4] पवस्व सोम धारया।[5] मधोर्धारामनु क्षर।[5] अविशन् कलशं सुतः।[6] पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः।[7] 'आ कलशेषु धावति पवित्रे परिषिच्यसे।[8] आदि स्थलों से सोम का ओषध होना, पत्थर से कूटना निचोड़ना, छानना तथा कलश में रखना आदि सिद्ध किया जा सकता है।

सोम का ओषधि के रूप में उल्लेख ब्राह्मण ग्रन्थों तथा श्रौतग्रन्थों में विस्तार से मिलता है। सुश्रुत[9] में सोम के भेद, उत्पत्ति स्थल तथा चन्द्रमा की कला के साथ शुक्ल पक्ष में १-१ पत्ते के बढ़ते हुए पूर्णिमा को १५ पत्ते हो जाने तथा कृष्णपक्ष में १-१ पत्ते के कम होते होते—कृष्णपक्षक्षये चापि लता भवति केवला—अमावस्या में केवल लता ही शेष रहती है, पत्ता एक भी नहीं रहता। ब्राह्मण ग्रन्थादि में सोमक्रयण, सोम सवन, उसका द्रोणकलश में रखना तथा सोमयाग का विशद उल्लेख मिलता है जो इसके ओषध रूप होने का स्पष्ट प्रमाण है।

---

१. सोमं मन्यते पपिवान् यं संपिषन्त्योषधिम्।
सोमं यं ब्राह्मणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिवः॥
—ऋ. १०.८५.३ —अथर्व. १४.१.३

२. —अथर्व. ५.२४.७।

३. —ऋ. ९ ११.५।

४. —वही. ९.१३.१।

५. —वही. ९.२९.४।

६. —वही. ९.६२.१९।

७. —वही. ९.८.६।

८. —वही. ९.१७.४।

९. —चि. स्था. अ. २९।

जहाँ तक सोम के मादक होने का प्रश्न है, उससे वेद सहमत नहीं है। यदि मदि हर्षे धात्वनुसार मद को हर्ष के अर्थ में लिया जाए तथा मादक का अर्थ हर्षदायक किया जाए तो उससे वैदिकों को विरोध नहीं है। किन्तु यदि—बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारि तदुच्यते, के अनुसार इसे बुद्धिलोप कर देने वाले मद्य, भांग आदि जैसा कोई तत्त्व माना जाए तो वेद उससे सहमत नहीं है। क्योंकि वेद में शतशः पवित्र तथा पवमान सोम के विशेषण आए हैं। सामवेद का सोम सम्बन्धी मन्त्र समूह पवमान काण्ड कहलाता है। क्या मद्यादि किसी की बुद्धि में पवित्रता ला सकते हैं? अतः सोम नशीला पदार्थ नहीं है। दूसरे मादक पदार्थ बुद्धि का लोप करते हैं जब कि वेद में सोम को—जनिता मतीनाम्[१]—अर्थात् बुद्धियों को उत्पन्न करने वाला कहा है। जो लोग सोम को सुरा बतलाते हैं वे भी जब वैदिक साहित्य का अध्ययन करेंगे तब उन्हें प्रतीत होगा कि सोम तथा सुरा एक तत्त्व नहीं हैं अपितु पृथक्-पृथक् हैं। ब्राह्मणग्रन्थों में जहाँ सोम के अनेक अर्थ दिए हैं वहां इनका भेद भी स्पष्ट किया है। शतपथ ब्राह्मण[२] में कहा है—

प्रजापतेर्वा एते अन्धसी यत् सोमश्च सुरा च। यहाँ सोम और सुरा को पृथक् बतलाया गया है। तैत्तिरीयब्राह्मण का कथन है—

पुमान् वै सोमः स्त्री सुरा।[३]

पुरुष सोम है तथा स्त्री सुरा। जैसे स्त्री एवं पुरुष दोनों भिन्न-भिन्न हैं वैसे ही सोम तथा सुरा भी पृथक्-पृथक् हैं। सोम कोई सात्विक तत्त्व होना चाहिये यह दिखाने के लिए ऐतरेय ब्राह्मण सोम को ब्राह्मणों का भक्ष-भोजन बतलाता है।[४] वेद तत्त्वों का अन्वेषण करने के लिए ब्राह्मण का सात्विकाहारी होना नितान्त अपेक्षित है। इसलिए सोम को ब्राह्मणों का भोजन कहा है। अत्यन्त सात्विक होने के कारण सिंहोऽयम् की भांति ताण्ड्यब्राह्मण ने तो सोम को साक्षात् ब्राह्मण ही कह देता है।[५] इसे देवों का परम अन्न भी कहा है।[६]

---

१. सामवेद पू., अ. ५. खं. ६. मं. ५।
२. श. ५.१.२.१०।
३. तै. १.३ ३.४।
४. ब्राह्मणानां स (सोमः) भक्षः। ऐ. ७.२९।
५. सोमो वै ब्राह्मणः। तां. २३.१६.५।
६. एतद्वै देवानां परमन्नं यत् सोमः।। तै. ब्रा. २.३.३.२

यह तो स्पष्ट है कि सोम न मद्य है और न भांगादि जैसा कोई मादक द्रव्य है। अपितु वह—स्वादिष्ठ (स्वादिष्ठम्, ऋ. ९.७८.४), बुरी भावनाओं का नष्ट करने वाला—सोम जहि पवमान दुराध्यः—(ऋ. ९.७९.२), द्वेषभावनाओं का नाशक—घ्नता विश्व अपद्विषः—(ऋ. ९.६३.२६), स्वयं पवित्र तथा अन्यों को पवित्र करने वाला—पवमान सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः। यः पोता स पुनातु नः॥ (ऋ. ९.६७.२२), शुचिः पावको अद्भुतः—(ऋ. ९.७९.३), मन के अज्ञानरूप काले अन्धकार को नष्ट करने वाला—

कृष्णा तमांसि जङ्घनत् (ऋ. ९.६३.२४),

स्वाद में अत्यन्त माधुर्ययुक्त—मधुमत्तमाः (ऋ. ९.१२.१).

बुद्धिवर्धक—जनिता मतीनाम् (ऋ. ९.९६.५)

हृदय में लिए चारु तथा हर्षदायक—सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः॥ (ऋ. ९.८६.२१) आदि गुणयुक्त तत्त्व है।

वैदिक साहित्य में सोम अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। यथा—

१—ओषधिः सोमः सुनोतेर्यदेनमभि षुण्वन्ति॥ नि. ११.२

२—सत्यं श्रीर्ज्योतिः सोमः॥ श. ५.१.२.१०
श्रीर्वै सोमः॥ श. ४.१.३.९

३—सोमो राजा चन्द्रमाः॥ श. १०.४.२.१
असौ वै सोमो राजा विचक्षणश्चन्द्रमाः॥ कौषीतकि ब्रा. ४.४
तस्मात् सोमो राजा सर्वाणि नक्षत्राण्युपैति॥ षड्विंश ब्रा. ३.१२

४—सोमो राजा राजपतिः॥ तै. २.५.७.३

५—वृत्रो वै सोम आसीत्॥ श. ३.४.३.१३

६—पितृलोकः सोमः॥ कौ. १६.५। श. २.३.२.१२। तै. १.६.८.२

७—संवत्सरो वै सोमो राजा॥ कौशीतकि ब्रा. ७.१०

८—सोमो वै पवमानः॥ श. २.२.३.२२
एष वै सोमस्योग्दीथो यत्पवते॥ ताण्डय. ६.६.१८

९—सोमो वा इन्द्रः॥ श. २.२.३.२३

१०—सोमो रात्रिः॥ श. ३.४.४.१५

११—सोमो वै पर्णः॥ श. ६.५.१.१
सोमो वै पलाशः॥ कौ. २.२

१२—पशुर्वै प्रत्यक्षं सोमः॥ श. ५.१.३.७
सोम एवैष प्रत्यक्षं यत्पशुः॥ कौ. १२.६
पशवः सोमो राजा॥ तै. १.४.७.६

१३—सोमो वै दधि ।। तै. १.४.७६
१४—सोमः पयः ।। श. १२.७.३.१३
१५—एष वै यजमानो यत् सोमः ।। तै. १.३.३.५
१६—क्षत्रं सोमः ।। ऐ. २.३८
१७—यशो वै सोमः ।। श. ४.२.४.९
यशो वै सोमो राजा ।। ऐ. १.१३
यशो वै सोमो राजान्नाद्यम् ।। कौ. ६.६
१८—अन्नं सोमः ।। कौ. ९.६
एतद्वै देवानां परमन्नाद्यं यत् सोमः ।। कौ. १३.७
एतद्वै देवानां परमन्नं यत्सोमः ।। तै. १.३.३.२
१९—प्राणः सोमः ।। श. ७.३.१.२
२०—रेतः सोमः ।। कौ. १३.७ ।। शुक्रः सोमः ।। तां. ३.६.९
सोमो वै वृष्णो अश्वस्य रेतः ।। तै. ३.९.५५
२१—रसः सोमः ।। श. ७.३.१.१
२२—आपः सोमः सुतः ।। श. ७.१.१.२२
२३—तद्यत्तदमृतं सोमः सः ।। श. ९.५.१.८
२४—सोमो वै प्रजापतिः ।। श. ५.१.३.७
२५—परोक्षमिव ह वा एष सोमो राजा यन्न्यग्रोधः ।। ऐ. ७.३१

इनके अतिरिक्त अन्य भी अनेक सोम के अर्थ ब्राह्मणादि ग्रन्थों में तथा काठक, मैत्रायणी एवं तैत्तिरीय आदि शाखाग्रन्थों में मिलते हैं। इन्हें दिखाने का मेरा अभिप्राय यही है कि हमारे मन से यह भाव निकल जाए कि महर्षि द्वारा किए अनेक अर्थों को हम उनका किया मनमाना अर्थ न समझ लें।

वैसे भी सोम शब्द षु प्रसवैश्वर्ययोः (भ्वादि.), षुञ् अभिषवे (स्वादि.), षू प्रेरणे (तुदादि.) इन धातुओं से अर्तिस्तुसुहुसृ. (उणादि. १.१४०) सूत्र से मन् प्रत्यय लग कर निष्पन्न होता है। अतः अभिषव, प्रेरणा, उत्पादन तथा ऐश्वर्ययुक्त तत्त्व सोम कहा जा सकता है। महर्षि दयानन्द ने ब्राह्मणादि ग्रन्थों, धात्वर्थों तथा अपनी प्रातिभ शक्ति के आधार पर प्रसंगानुसार सोम शब्द के विभिन्न अर्थ किए हैं। यथा—

१—ऐश्वर्य सम्बन्धी—
ऐश्वर्ययुक्त-यजु. २५.१६, २६.२५, ऋ. ३.५१.७, ४.२८.१।
ऐश्वर्यप्रापक-यजु. ६.२६, ६.३३, ८.२६, ८.५०, १९.५५, ऋ. १.९१.१८, ३.३.१।
योगैश्वर्ययुक्त ऋ. ९.१३३.४ (संस्कार विधि, संन्यास प्रकरण)।

ऐश्वर्यंकारकं वेदशास्त्रबोधम्, ऋ. १.१०१.९ ।
योगसिद्धमैश्वर्यम्, यजु. ७.४, योगैश्वर्यवृन्दः, यजु. ७.९ ।
ऐश्वर्यगुणयुक्त गृहाश्रम, यजु. ८.४९ ।
धान्याद्यैश्वर्यस्य, यजु. २६.२३, ऋ. ४.३२.१७ ।
सुखैश्वर्यंकारको न्यायः, ऋ. १.१३६.४ ।
विद्यैश्वर्ययुक्तः सत्कारी जनः, ऋ. १.४५.१० ।
ऐश्वर्यमिच्छुः (न्यायाधीशः) यजु. ९.३१ ।
ऐश्वर्ययुक्ताय राज्याय वा, यजु. ४.२४ ।
ऐश्वर्योपपन्नाय (जनाय), यजु. १६.३९ ।
ऐश्वर्यवन्तः सभासदः, यजु. २१.४२, ऐश्वर्ययुक्त विद्वन्, यजु. २६.२५ ।
ऐश्वर्याः पदार्थाः, ऋ. ४.१४.४ ।
ऐश्वर्यप्रापके ब्रह्मणि, ऋ. १.८०.१ ।
२—जगदुत्पादक जगदीश्वर, सोमलतादि ओषधि यजु. ३.५६ ।
महौषधिरस ऐश्वर्यो वा ऋ. २.१४.३, ५.४३.५ ।
३—सोमविद्यासम्पादक यजु. ४.३७ ।
४—चन्द्र सम्बन्धी—

चन्द्र इव वर्तमानः यजु. १२.११२ ।
चन्द्रः ऋ. ३.६२.१४, चन्द्रलोकेन अथर्व, १४.१.२ (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका) ।
चन्द्रमाः सोमलताद्योषधिगणः, अथर्व. १४.१.५४ (संस्कारविधि) ।
चन्द्रेण प्रकाशमानेवाह्लादकत्वेन, यजु. १०.३० ।
५—सर्वजगदुत्पादक, यजु. १.३८, ५.७, ७.२५ ।
६—सोमवल्ली सम्बन्धी—
सोमवल्लीव सर्वरोग विनाशक, यजु. ३४.२२, ऋ. १.१८७.९ ।
सर्वरोगनाशक महौषधिरसः, ऋ. ३.५३.६ ।
ओषधिविज्ञानाय, यजु. १०.५ । ओषधिगणशोधनाय, यजु. २२.६ ।
सोमलताद्योषधिसमूहेन, यजु. १९.१ ।
सोमलतोद्भवेन (ओषधिरसेन), ऋ. ५.३४.२ ।
सोमवल्ली यजु. ८.१०, १०.५, १५.६०, १९.२१, १९.२५, २२.६, २४.९, २४.२९, २८.२६, ऋ. १.१०.४, १.२८.९, २.१४.३, ३.४०.५, ५.३४.२, ५.४३.५, १.४७.१ । अभिषोतुमर्हस्य (ओषधिरसस्य) यजु. १९.२१, २४.९, ३४.२ ।
सोमलतादिसमूहरसः, ऋ. १.१८.४ । रसविशेषः, यजु. १९.२५ ।
वैद्यकशिल्पक्रियया संसाधित ओषधि रसः, ऋ. १.४७.१ ।
७—वीर्यवत्तम, ऋ. १.९१.१६ ।

८—सर्वविद्यायुक्त, ऋ. १.९१.२३ ।
९—सोम्यगुणसम्पन्न आरोग्यबलप्रापकः, ऋ. १.९१.२२ ।
सोम्यगुणसम्पन्नो राजा, यजु. ७.२१, सौम्यगुणसम्पन्न (ईश्वर) आर्याभिविनय ३८ ।
सोम्यगुणसम्पन्नाः सभ्याजनाः, ऋ. ४.१७.६ ।
१०—सर्वसुहृत् सौहार्दप्रदो वा, ऋ. १.९१.८ ।
११—बहुसुखप्रसाधकवायो, ऋ. १.४३.७, १.९३.५ ।
१२—सन्मार्गे प्रापक, यजु., ५.३९ ।
१३—सर्वेश्वर्यसुखप्रद, ऋ. १.४३.९ ।
१४—रक्षक, ऋ. १.९१.११ ।
१५—सब का सार निकालने वाला, प्राणस्वरूप शान्तात्मा, यजु. १.१९ (आर्याभि.)
१६—सोमरसान्वितं पाकम्, यजु. १२.५५ ।
१७—पदार्थरसम्, ऋ. १.१५.५ । उत्तममूलफलरस, ऋ. ९.११३.१ (सं. वि.)
ओषधिजन्यं घृतदुग्धादिकं रसम्, ऋ. ३.४७.४ ।
१८—सर्वपदार्थाभिषवम् ऋ. १.१६.१ ।
१९—उत्पन्नपदार्थसमूह, ऋ. १.२१.१ ।
२०—सोमलताद्योषधिसारपातारम् (वैद्यम्) ऋ. २.११.११ ।
२१—वीररसादिकम्, ऋ. १.४७.३ ।
२२—सृष्टिक्रमेण सर्वपदार्थाभिषवकर्तारं शान्तम्, १.८९.३ ।
२३—सूयन्ते यस्मिंस्तं संसारम्, ऋ. ३.४७ ।
सोतव्यस्य सुखस्य, ऋ. १.२२.१ ।
यः सूयते सर्वेभ्यः पदार्थेभ्यो रसः, ऋ. १.१६.३ ।
यः सर्वं जगत् सूते सः, ऋ. ६.४४.२४ ।
सुन्वन्त्यैश्वर्याणि प्राप्नुवन्ति यस्मिन् संसारे तस्मिन्, यजु. २.१९ ।
ये सुन्वन्ति सूयन्ते वा ते पदार्थाः, ऋ. ३.३६.२ ।
सूयन्ते उत्पद्यन्ते ये ते पदार्थाः, ऋ. १.२.१ ।
सोतव्ये सर्वस्मिन् पदार्थे विमानादियाने वा, ऋ. १.५.२ ।
२४—जलम्, ५.३४.३, रसभूतैर्जलैः, ऋ. १.१०८.४ ।
२५—शुभगुणकर्म में प्रेरक, यजु. ७.१४ (सं. वि.), ऋ. १.९१.३ ।
पुरुषार्थे प्रेरकम्, यजु. १९.३४ । धर्मप्रेरकस्य, ऋ. १.११९.९,
अन्तर्यामी प्रेरक, ऋ. ७.१४.१ (सं. वि.) । सत्याचारे प्रेरकः, यजु. ३४.११ ।
ऐश्वर्यवान् सत्याचारे प्रेरकः शरीरात्मबलं वा, यजु. ३४.२१ ।
सुपथ्ये युक्ते व्यवहारे प्रेरयत् (सखा), ऋ. ३.६२.१५ ।
सेनाप्रेरकः, यजु. १७.४० ।

२६—अमृताख्यं रसम्, यजु. ४.३१ ।
२७—उत्पन्नस्य जगत:, ऋ. १.४६.१२ ।
उत्पद्यमानस्य (जगत:), ऋ. २.१५.३ ।
२८—मृदुगुणवर्धक: (गृहाश्रम:) यजु. ८.१ ।
२९—सौकुमार्यादिगुणयुक्तत्वाद् विवाहित: प्रथम: पति:, ऋ. ८.३.२७ ऋ. भू. ।
३०—राजसभाया: सभासत् प्रजाजनो वा, यजु. ७.२१ ।
३१—शुभकर्मसु प्रवृत्ताय (विद्वज्जनाय), यजु. ८.४९ ।
३२—विद्यायोगाभ्यास और परमेश्वर की भक्तिरूपी सोम से ऋ. ९.११३.६ (सं.वि.)
वेद में सोम के कार्य और विशेषणों को देखने से भी ज्ञात होता है कि वहाँ सोम विविध तत्त्वों का वाचक है ।

१—अचिक्रदद् वृषा हरिर्महान् मित्रो न दर्शत: । संसूर्येण रोचते ।। ऋ. ९.२.६
२—सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रव: । अथा नो वस्यसस्कृधि ।। ऋ. ९.४.१
३—मनश्चिन्मनसस्पति: ।। ऋ. ९.११.८
४—विश्वा अप द्विषो जहि ।। ऋ. ९.१३.८
५—पति: सिन्धूनां भवन् ।। ९.१५.५
६—सचे जनन्त सूर्यम् ।। ऋ. ९.२३.२
७—वृत्रहा देव वीतम: ।। ऋ. ९.२५.३
८—जनयन् रोचना दिवो जनयन्नप्सु सूर्यम् । वसानो गा अपो हरि: ।। ऋ. ९.४२.१
९—विप्रवीर: सदावृध: ।। ९.४४.५ । रक्षांस्यपजङ्घनत् ।। ऋ. ९.४९.५
१०—पवमानो अशस्तिहा ।। ऋ. ९.६२.११
११—घ्नन्तो विश्वा अप द्विष: ।। ९.६३.२६ । जहि रक्षांसि सुक्रतो ।। ९.६३.२७ ।
अपघ्नन्त्सोम रक्षस: ९.६३.२९
१२—अस्मेवसूनि धारय सोम दिव्यानि पार्थिवा । इन्दो विश्वानि वार्या ।।
ऋ. ९.६३.३०

१३—जहि शत्रुमन्तिके दूरके च य उर्वी गव्यूतिमभयं च नस्कृधि ।। ऋ. ९.७८.५
१४—तवेमा: प्रजा दिव्यस्य रेतस: त्वं विश्वस्य भुवनस्य राजसि ।
अथेदं विश्वं पवमान ते वशे त्वमिन्दो प्रथमो धामधा असि ।। ऋ. ९.८६.२८
१५—त्वं समुद्रोअसि विश्ववित् कवे तवेमा: पञ्च प्रदिशो विधर्मणि ।
त्वं द्यां च पृथिवीं चाति जभ्रिषे तव ज्योतींषि पवमान सूर्य ।। ऋ. ९.८६.२९
१६—सोम: पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्या: ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णो: ।। ऋ. ९.९६.५
१७—सोमेनादित्या बलिन: सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षाणामेषामुपस्थे सोम आहित: ।। ऋ. १०.८५.२

इसी प्रकार—दिवि सोमो अधिश्रितः (अथर्व. १४.१.१) आदि शतशः प्रमाण दिए जा सकते हैं जो सोम को औषधि से अतिरिक्त अन्य तत्त्व भी स्पष्ट करते हैं। इसी आधार पर महर्षि दयानन्द ने सोम के अनेक अर्थ किए हैं। वेदार्थ के विषय में एक तथ्य ध्यान देने योग्य है कि वेद के सब शब्द यौगिक अथवा योग-रूढ़ि हैं, रूढ़ि नहीं। जो विद्वान् इस रहस्य को समझ लेते हैं उन्हें महर्षि दयानन्द के वेदभाष्यादि में किए अर्थों में एक स्पष्टता तथा विस्तृतता के दर्शन होने लगते हैं तथा रूढ़ि शब्दों को सामने रखने वालों को वे अटपटे लग सकते हैं। वेद, ज्ञान का वह कोश है जिसका ताला खोलने के लिए पूर्णविद्या, योगाभ्यास एवं ऋतम्भरा प्रज्ञा की कुंजी अपेक्षित है। महर्षि दयानन्द को सौभाग्य से इन तीनों के साथ पूर्णब्रह्म को समर्पण शक्ति भी प्राप्त थी, जो मस्तिष्क में उर्वरता तथा हृदय में तरलता लाती है। उन्होंने वेदभाष्य करते समय प्रकरण तथा मन्त्र में आए विशेषणों के आधार पर एवं योगज प्रातिभ शक्ति के आधार पर वेदार्थ किया। जिससे वेदभाष्य में एक सुखद क्रान्ति आई और कर्मकाण्ड के भंवर से निकल कर वेद, ज्ञान, कर्म, उपासना तथा विज्ञान का आकर बन गये। वेद में वर्णित सोम भी ओषधि तथा चन्द्रमा की परिधि से निकल कर पूर्व ऋषि-मुनियों द्वारा प्रदर्शित अर्थों की भांति विशद अर्थों को अपने अंक में समेटने में सक्षम हुआ, जैसे कि इस लेख में पूर्व दिखा आए हैं। यह अर्थ किसी का अनुकरण नहीं हैं अपितु उनकी आर्ष प्रतिभा का परिचायक है।

दयानन्द नगरी, ज्वालापुर—हरिद्वार

सोम (परमात्मा)

—वेदप्रिय शास्त्री

वेदवर्णित अनेक देवताओं में से सोम भी एक देवता है। यह अतिप्रसिद्ध देवता है और वैदिक कर्मकाण्ड में इसका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्रौत-यागों में इष्टियों और पशु बन्ध के पश्चात् सोमयागों का विधान है जो मुख्यतया सात प्रकार के होते हैं। इन सोमयागों में कतिपय लता काण्डों को कूट कर जो रस निकाला जाता है उसे ही याज्ञिक लोग सोमरस कहते हैं जिसका पान विशेष विधि-पूर्वक ही किया जाता है। वेदों के भाष्यकार सायण, महीधर आदि ने स्वभाष्यों में सोम का अर्थ सर्वत्र यही लता-रस या सुरा विशेष ही किया है। परन्तु इन लोगों ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि कर्मकाण्ड में प्रयुक्त सोमरस वास्तविक सोमरस न होकर उसका प्रतिनिधि मात्र है। याज्ञिकों ने कभी वास्तविक सोम के बारे में सोचा ही नहीं और भाष्यकारों को भी इसका ज्ञान नहीं था। परन्तु ब्राह्मणकारों ने इस प्रकार के अर्थ को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने भिन्न प्रकरणों में सोम के पृथक्-पृथक् अर्थ किए हैं और प्रायः वह सोम द्रव्यपरक न होकर आध्यात्मिक पदार्थ प्रतीत होने लगता है। ब्राह्मणकारों ने सोम सवन के प्रकरण में सोम के निम्नलिखित अर्थ किए हैं।[1]

(१) श्रीर्वै सोमः ।। शतपथ ४-१-३-९।।
(२) राजा वै सोमः ।। १४-१-३-१२।।
(३) गयोऽसिइति सोमं वा एतदाह ।।गोपथ पू०५-१४।।
(४) यो वै विष्णु सोमः सः ।। शत० ३-३-४-२१
(५) सोमो वै प्रजापतिः ।। शत. ५-१-५-२६
(६) क्षत्रं वै सोमः ।। शत. ३-४-१-१०।।
(७) सोमो वै यशः ।। तैत्तिरीय आरण्यक २-२-८-८ ।।
(८) योऽयं पवते (वायुः) एष सोमः ।। शत. ७-३-१-१।।
(९) प्राणः सोमः ।। शत. ७-३-१-४५।।
(१०) रेतः सोमः ।। ऐतरेय. १३-७।।
(११) सोमो वै ब्राह्मणः तैत्तिरीय. २-७-३-१।।

---

१. सामवेद भाष्य की भूमिका (जयदेव शर्मा)

वेदों में सोम के अनेक रूप प्राप्त होते हैं। वहाँ वह पार्थिव भी है और दिव्य भी। वह भौतिक पदार्थ भी है और आध्यात्मिक भी। यथा—

सोमं मन्यते पपिवान् यत् सम्पिषन्ति ओषधिम्।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन ।।

—ऋ. १०-८५-३

अर्थ—सोमपान करने वाला तो उसे ही सोम मानता है जो औषधियों को पीसकर निचोड़ा जाता है। परन्तु जिस सोम को ज्ञानी लोग जानते हैं उसे कोई नहीं खाता है। तथा—

सोमेनादित्याः बलिनः सोमेन पृथ्वी मही।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ।।

—ऋ० १०-८५-२

अर्थ—सोम से आदित्य बलशाली है, सोम से पृथ्वी महती शक्तिशाली है। इस आकाश में भी और नक्षत्रों में भी सोम उपस्थित है।

तथा च दिवि सोमो अधिश्रितः ।। ऋ. १०-८५-१

अर्थात् सोम आकाश में अधिष्ठित है, इत्यादि।

सोम का सुरा विशेष या मादक पेय अर्थ वेद में कहीं प्राप्त नहीं होता। प्रतीत होता है कि वैदिक कर्मकाण्ड को विकृत करने वाले धूर्त याज्ञिकों ने ही सोम का यह स्वरूप प्रचलित किया है।

ब्राह्मणकारों ने सोम के अनेक अर्थों में से उसका एक अर्थ प्राण, प्रजापति और विष्णु भी किया है। इन शब्दों का अर्थ परमात्मा भी होता है। अतः ब्राह्मणकार सोम का परमात्मा अर्थ स्वीकार करते हैं। वस्तुतः अग्नि की भाँति सोम भी परमात्मा का एक गुणवाची नाम है और इस गुण से युक्त सभी प्राकृतिक पदार्थ सोम नाम से कहे गए हैं।

निरुक्तकार यास्क ने भूतपरक वे नाम जो परमात्मा के भी हैं, का वर्णन किया है उनमें एक का नाम सोम भी है।[1]

अतः स्पष्ट है कि वेदों में सोम शब्द परमात्मा अर्थ में प्रयुक्त है और जहाँ कहीं वह इस अर्थ में प्रयुक्त है वहाँ उसका मुख्य अर्थ परमात्मा ही होगा अन्य सभी

१. निरुक्त अ-१३ पृ. २२६

अर्थ गौण रूप से होंगे। आचार्य यास्क ने उदाहरण स्वरूप कुछ ऐसे वेद मन्त्र भी उद्धृत किए हैं जिनमें सोम का अर्थ परमात्मा है।[1]

यास्क कहते हैं—'अथैतं महान्तमात्मानमेतानि सूक्तान्येता ऋचाऽनु प्रवदन्ति।' इसका भाष्य करते हुए स्वामी ब्रह्ममुनि लिखते हैं—

अथ एतं महान्तं खल्वात्मानं विश्वात्मान परमात्मानं एतानि वक्ष्यमाणानि सूक्तानि अनु प्रवदन्ति।[2]

यास्क ने जिन सूक्तों की ओर इंगित किया है वे हैं ऋग्वेद मं. ९ सूक्त ९६ और ९७ के मन्त्र। यास्क द्वारा उद्धृत मन्त्र निम्नलिखित हैं—

१—सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः॥
ऋ. ९-९६-५

२—ब्रह्मा देवानां पदवी कवीनां ऋषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम्।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन्॥
—ऋ. ९-९६-६

३—तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निॠतस्य धीतिम् ब्रह्मणोमनीषाम्।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशाना॥
—ऋ. ९-९७-३४

४—सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः।
सोमः सुतः पूयते अज्यमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः संनवन्ते॥

५—अक्रान्त्समुद्रः प्रथमेविधर्मन् जनयन् प्रजा भुवनस्यराजा।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुः॥

६—महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान्।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः॥
—ऋ. ९-९७-३५, ४०, ४१

उक्त मन्त्रों में आए सोम शब्द का अर्थ आचार्य यास्क ने अध्यात्म में परमात्मा किया है अतः सोम का अर्थ परमात्मा सिद्ध है। यास्क सोम का एक अर्थ

---

१. निरुक्त पृ-२२७
२. निरुक्त सम्मर्श (स्वा. ब्रह्ममुनि)

चन्द्रमा भी करते हैं।[1] लोक में भी सोम पर्याय चन्द्रमा है। वेद में चन्द्रमा परमात्मा का नाम है स्वयं वेद कहता है 'तदु चन्द्रमाः ।।यजु ३२-१

तथा—चन्द्राभिर्गृणते युवस्व ।।ऋ. ६-६-७

इस प्रकार भी सोम का अर्थ परमात्मा किया जा सकता है। महर्षि दयानन्द ऋग्वेदभाष्यभूमिका में प्रतिज्ञा विषय पर लिखते हैं कि—'नैवेश्वरस्यैकस्मिन्नपि मन्त्रार्थेऽत्यन्तं त्यागो भवति। कुतः? निमित्तकारणस्येश्वरस्यास्मिन् कार्ये जगति सर्वाङ्ग व्याप्तिमत्वात्, कार्यस्येश्वरेण सहान्वयाच्च। इत्यादि

अर्थात् एक भी मन्त्र के अर्थ में ईश्वर का सर्वथा त्याग नहीं किया जा सकता क्योंकि सृष्टि का निमित्त कारण ईश्वर कार्य जगत् के सर्वाङ्ग में व्यापक है और प्रत्येक कार्य ईश्वर के साथ अन्वित है।

महर्षिदयानन्द के अनुसार तो प्रत्येक सोम देवता वाला वेद मन्त्र सोम का ईश्वर अर्थ तो देगा ही उसका त्याग नहीं होगा। यह महर्षि की स्वकल्पना नहीं, आर्ष मान्यता है जो परम्परा से चली आ रही थी परन्तु बाद में लोग भूल गए थे। यास्क ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है—

'महाभाग्या द्देवतायाः एक आत्मा बहुधा स्तूयते। एकस्य आत्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति..........इत्यादि।[2]

अर्थात् 'देवता का बड़ा ऐश्वर्य होने से एक आत्मा का बहुत प्रकार से वर्णन किया जाता है, एक आत्मा के ही अन्य देवता अंग प्रत्यङ्ग हो जाते हैं और नाना प्रकार के सामर्थ्य देखकर भी अनेक नामों से ऋषियों ने स्तुतियाँ की हैं और वह आत्मा समान रूप से सब पदार्थों में मूल कारण होने से सभी नाम उस महान आत्मा के ही होने सम्भव हैं। इस कारण से भी उसी एक आत्मा की नाना नामों से स्तुति की जाती हैं।

इस प्रकार यह निश्चय हो जाता है कि सोम नाम परमात्मा का ही है। वस्तुतः सोम एक ऐसा तत्त्व है या जीवन तत्त्व है जो सृष्टि को सुन्दर, सुखद और मृदु बनाता है, जो पदार्थों को आर्द्र, स्वादिष्ठ और आरोग्यवर्धक बनाता है और जिसके कारण सर्वत्र क्षतिपूर्ति होती रहती है। इसीलिए सोम को रस कहा गया है। अध्यात्म में यह ब्रह्मानन्द रस ही है। गीता में भी यही बात कही गई है यथा—'सोमो भूत्वा रसात्मकः।' अर्थात् परमेश्वर सोमरस होकर सर्वत्र विद्यमान है

---

१. निरुक्त अ. ५ या १-४।

२. निरुक्त दैवत काण्ड अ—१ पाद १

इत्यादि। परमात्मा रस भी है और रसाधार भी। उपनिषद् और वेद दोनों ऐसा वर्णन करते हैं। यथा—

रसो वै सः ।।तैत्तिरीय उ० २/७ ।।

और—रसेन तृप्तः न कुतश्चनोनः ।। अथर्व. १०-८-४४

अर्थात् परमात्मा रस है, रस से पूर्ण है उसमें कोई न्यूनता नहीं है, वह पूर्ण है इत्यादि।

'सोमं पिब वृत्रहन्' नारायणोपनिषद् पृ. २०० में सोम का अर्थ परमात्मा है।

यह सोमरस देवगण इन्द्र के पीने के लिए निचोड़ते हैं। इसे पीकर इन्द्र बलशाली होता है और वृत्र का वध करता है। वैदिक कर्मकाण्ड में इसका प्रतीकात्मक अभिनय किया जाता है, वहाँ पर लता काण्डों और जड़ीबूटियों का रस भेड़ के बालों से बने एक छन्ने से, जिसे दशापवित्र कहा जाता है, छाना जाता है, इस समय जो मन्त्र पढ़े जाते हैं उनमें से एक मन्त्र यह है—

पुनानः सोम जागृविख्या वारैः परिप्रियः।
विप्रोऽभवोऽङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञं मिमिक्षणः ।। —ऋ. ९-१०७-६

सायणाचार्य ने इसका अर्थ यूं किया है—

'हे सोम ! जागरण शील छाना जाता हुआ तू भेड़ के बालों से बने वस्त्रखण्ड पर बहता है। हे अंगिरों में श्रेष्ठ मेधावी ! तू पितरों का नेता होता है, वह तू हमारे यज्ञ को मधु अर्थात् अपने रस से सींचा। आचार्यसायण का यह अर्थ विद्यमान ओषधिरस के साथ संगत नहीं होता। वास्तव में यहाँ किसी अन्य सोम का ही वर्णन है। जो चेतन प्रतीत हो रहा है। यहाँ सोमरस जीवन तत्त्व का प्रतीक है, इन्द्र संयमी आत्मा है, यह दश प्राणों के संयम से जीवन तत्त्व को प्राप्त करता है और पाप रूप वृत्र का वध करता है। यह जीवन तत्त्व परमात्मा है, वही शक्ति का स्रोत है, वही ज्ञानवान् प्राणों का भी प्राण और अत्यन्त सुस्वादु है। इसे खाकर—अमृत अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है। इसका वर्णन वेद में इस प्रकार है—

अपाम सोमम् अमृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्।
किं नूनं अस्मान् कृणवदरातिः किम धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ।।

—ऋ. ८-४८-३

अर्थ—हम सोम का पान करें और अमर हो जावें। ज्योति अर्थात् ज्ञान को प्राप्त हों और देवों को प्राप्त करें अर्थात् विद्वानों का सत्संग सान्निध्य प्राप्त करें।

हे अमृत अर्थात् अमरण धर्मा परमात्मन् ! आन्तरिक शत्रु हमारा क्या करेंगे और मरणधर्मा जन की कुटिल चालें हमारा क्या लेंगी ? निश्चय ही कुछ नहीं कर सकतीं।

वेद में सोम को बुद्धिवर्धक, आयु प्रदाता, बलदाता, हर्ष, उल्लास और उत्साहवर्धक कहा गया है। पितरों अर्थात् ज्ञानी जनों का नेता कहा है, निश्चय ही वह परमात्मा ही हो सकता है। ऋग्वेद के आठवें काण्ड का ४८वाँ सूक्त और ९वें काण्ड के सम्पूर्ण मन्त्र सोम परमात्मा का वर्णन करते हैं। उक्त मन्त्र में जिस सोम का पान करके अमर होने की चर्चा है वह परमात्म रस के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। परमात्मा का उपासक, योगाभ्यास और विद्वानों के संसर्ग से ज्ञान, प्राण, वीर्य, यश आदि सभी अन्य सोम भी प्राप्त कर लेता है।

अब हम कतिपय ऐसे वेद मन्त्र उद्धृत करते हैं जिनका देवता सोम है और सोम का अर्थ किसी भाष्यकार ने परमात्मा किया है। सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द[1] प्रणीत भाष्ययुक्त दो मन्त्र प्रस्तुत हैं।

१—वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः।
प्रजावन्तः सचेमहि ॥ —यजु. ३-५६

अर्थ—हे (सोम) चराचर जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता जगदीश्वर ! आपके (व्रते) सत्यभाषणादि धर्माचरण में वर्तमान हम लोग (तनूषु) विस्तृत सुखवाले शरीरों में (मनः) अन्तःकरण की अहंकारादि वृत्तिरूप मन को (बिभ्रतः) धारण और पुष्ट करते हुए तथा (प्रजावन्तः) उत्तम सन्तान और राष्ट्र नायक प्रजा वाले होकर (वयम्) हम लोग सब सुखों से (सचेमहि) संयुक्त रहें।

२—अंशुरंशुष्टे देव सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधनविदे। —यजु. ५-७

अर्थ—हे (सोम) सब पदार्थों के उत्पत्ति कर्त्ता (देव) दिव्य गुणों से युक्त ईश्वर ! आपका सामर्थ्य पुष्टिकारक औषधियों से प्रत्येक अंग को बढ़ाता है…… इत्यादि। अब पं आर्यमुनिकृत ऋग्वेद मंडल ९ के कुछ मन्त्र प्रस्तुत करते हैं जो सार्वदेशिक सभा द्वारा प्रकाशित ऋग्वेद हिन्दी भाष्य से लिए गए हैं।

३—बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे।
सोमाय गाथमर्चत ॥—ऋ. ९.११.४

अर्थ—हे मनुष्यो ! (बभ्रवे) जो विश्वम्भर परमात्मा है और जो (स्वतवसे) बलस्वरूप है और (दिविस्पृशे) जो द्युलोक तक भी फैला है। (सोमाय) जो चराचर

१. महर्षि ने संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण में प्रातःकाल पढ़े जाने वाले प्रथम मन्त्र प्रातरग्निम् में सोमम् का अर्थ प्रेरक अन्तर्यामी जगदीश्वर किया है।

जगत् का उत्पादक है (आरुणाय) जो सर्वव्यापक है उसके लिए ही (गाथम् अर्चत) स्तुतिगाया करो ।

४—अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोमशंगवे ।
देवेभ्यो अनुकामकृत् ।। —ऋ. ९.११.६

अर्थ—हे (सोम) परमात्मन् ! (अमित्रहा) आप प्रेमरहित नास्तिकों के हनन करने वाले हैं (देवेभ्यो अनुकामकृत्) और दैवी सम्पत्ति के गुण रखने वाले लोगों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं क्योंकि (विचर्षणिः) आप न्यायदृष्टि से देखने वाले हैं (गवे) हमारी वृत्तियों (शं) पवित्रकर हमारा कल्याण करें ।

५—स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभिनो ज्योतिषावीत् ।
येना नः पूर्वेपितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभिगा अद्रिमुष्णन् ।।
—ऋ. ९.९७.३९

(स सोमः) वह परमात्मा (वर्धिता) सबको बढ़ानेहारा (वर्धनः) स्वयं वर्धमान है (पूयमानः) शुद्ध स्वरूप (मीढ्वान्) सब सुखों का वर्षक (ज्योतिषा) अपने ज्ञान से (नः) हमारी (अभ्यावीत्) रक्षा करे जिस परमात्मा से (नः) हमारे (पूर्वे पितरः) पूर्व ज्ञानी जन (पदज्ञः) पदार्थवित् और (स्वर्विद) स्वतन्त्र सत्ता के जानकार (अद्रिमुष्णन्) अपनी चित्तवृत्तियों का निरोध करते हुए (अभिगाः) अभिमुख होते रहे हैं । इसके पश्चात् सामवेद के पवमान काण्ड के मन्त्र प्रस्तुत करते हैं जिनका भाष्य पं. जयदेव शर्मा विद्यालंकार ने किया है ।

६—त्वया वयं पवमानेन सोमभरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथ्वी उतऽद्यौः ।।

अर्थ—हे (सोम) जगदीश्वर ! समस्त संसार को (पवमानेन) पवित्र करने हारे (त्वया) तुझ सहायक से फलप्राप्त करने हारे (वयम्) हम लोग इस जीवन में (शश्वत्) निरन्तर (कृतम्) अपने उत्तम किए कर्म ही विशेष रूप से संग्रह करें। स्नेहवान् (मित्रवरुणः) पापनिवारक (अदितिः) अखण्डनीय (सिन्धुः) सर्वव्यापक सबका आश्रय (पृथ्वी उतद्योः) पृथ्वी के समान सबका धारक और सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप हमें अभिलाषित फल प्रदान करें ।[1]

७—स सुन्वे यो वसूनाम् यो रायानामानेता य इडानाम् ।
सोमो यः सुक्षिनाम् ।।—साम. ५.११.५ (पवमान काण्ड)

---

१. सामवेद (अख्यकाण्ड अ. ६ मं. ५)

वेदों में सोम के अनेक रूप प्राप्त होते हैं। वहाँ वह पार्थिव भी है और दिव्य भी। वह भौतिक पदार्थ भी है और आध्यात्मिक भी। यथा—

सोमं मन्यते पपिवान् यत् सम्पिषन्ति ओषधिम्।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन॥

—ऋ. १०-८५-३

अर्थ—सोमपान करने वाला तो उसे ही सोम मानता है जो औषधियों को पीसकर निचोड़ा जाता है। परन्तु जिस सोम को ज्ञानी लोग जानते हैं उसे कोई नहीं खाता है। तथा—

सोमेनादित्याः बलिनः सोमेन पृथ्वी मही।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः॥

—ऋ० १०-८५-२

अर्थ—सोम से आदित्य बलशाली है, सोम से पृथ्वी महती शक्तिशाली है। इस आकाश में भी और नक्षत्रों में भी सोम उपस्थित है।

तथा च दिवि सोमो अधिश्रितः॥ ऋ. १०-८५-१

अर्थात् सोम आकाश में अधिष्ठित है, इत्यादि।

सोम का सुरा विशेष या मादक पेय अर्थ वेद में कहीं प्राप्त नहीं होता। प्रतीत होता है कि वैदिक कर्मकाण्ड को विकृत करने वाले धूर्त याज्ञिकों ने ही सोम का यह स्वरूप प्रचलित किया है।

ब्राह्मणकारों ने सोम के अनेक अर्थों में से उसका एक अर्थ प्राण, प्रजापति और विष्णु भी किया है। इन शब्दों का अर्थ परमात्मा भी होता है। अतः ब्राह्मण-कार सोम का परमात्मा अर्थ स्वीकार करते हैं। वस्तुतः अग्नि की भाँति सोम भी परमात्मा का एक गुणवाची नाम है और इस गुण से युक्त सभी प्राकृतिक पदार्थ सोम नाम से कहे गए हैं।

निरुक्तकार यास्क ने भूतपरक वे नाम जो परमात्मा के भी हैं, का वर्णन किया है उनमें एक का नाम सोम भी है।[1]

अतः स्पष्ट है कि वेदों में सोम शब्द परमात्मा अर्थ में प्रयुक्त है और जहाँ कहीं वह इस अर्थ में प्रयुक्त है वहाँ उसका मुख्य अर्थ परमात्मा ही होगा अन्य सभी

१. निरुक्त अ-१३ पृ. २२६

अर्थ गौण रूप से होंगे। आचार्य यास्क ने उदाहरण स्वरूप कुछ ऐसे वेद मन्त्र भी उद्धृत किए हैं जिनमें सोम का अर्थ परमात्मा है।[1]

यास्क कहते हैं—'अथैतं महान्तमात्मानमेतानि सूक्तान्येता ऋचाऽनु प्रवदन्ति।' इसका भाष्य करते हुए स्वामी ब्रह्ममुनि लिखते हैं—

अथ एतं महान्तं खल्वात्मानं विश्वात्मान परमात्मानं एतानि वक्ष्यमाणानि सूक्तानि अनु प्रवदन्ति।[2]

यास्क ने जिन सूक्तों की ओर इंगित किया है वे हैं ऋग्वेद मं. ९ सूक्त ९६ और ९७ के मन्त्र। यास्क द्वारा उद्धृत मन्त्र निम्नलिखित हैं—

१—सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः॥
ऋ. ९-९६-५

२—ब्रह्मा देवानां पदवी कवीनां ऋषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम्।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन्॥
—ऋ. ९-९६-६

३—तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निॠर्तस्य धीतिम् ब्रह्मणोमनीषाम्।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशाना॥
—ऋ. ९-९७-३४

४—सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः।
सोमः सुतः पूयते अज्यमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः संनवन्ते॥

५—अक्रान्त्समुद्रः प्रथमेविधर्मन् जनयन् प्रजा भुवनस्यराजा।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुः॥

६—महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान्।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः॥
—ऋ. ९-९७-३५, ४०, ४१

उक्त मन्त्रों में आए सोम शब्द का अर्थ आचार्य यास्क ने अध्यात्म में परमात्मा किया है अतः सोम का अर्थ परमात्मा सिद्ध है। यास्क सोम का एक अर्थ

१. निरुक्त पृ-२२७
२. निरुक्त सम्मर्श (स्वा. ब्रह्ममुनि)

चन्द्रमा भी करते हैं ।[1] लोक में भी सोम पर्याय चन्द्रमा है । वेद में चन्द्रमा परमात्मा का नाम है स्वयं वेद कहता है 'तदु चन्द्रमाः ।।यजु ३२-१

तथा—चन्द्राभिर्गृणते युवस्व ।।ऋ. ६-६-७

इस प्रकार भी सोम का अर्थ परमात्मा किया जा सकता है । महर्षि दयानन्द ऋग्वेदभाष्यभूमिका में प्रतिज्ञा विषय पर लिखते हैं कि—'नैवेश्वरस्यैकस्मिन्नपि मन्त्रार्थेऽत्यन्तं त्यागो भवति । कुतः ? निमित्तकारणस्येश्वरस्यास्मिन् कार्ये जगति सर्वाङ्ग व्याप्तिमत्वात्, कार्यस्येश्वरेण सहान्वयाच्च । इत्यादि

अर्थात् एक भी मन्त्र के अर्थ में ईश्वर का सर्वथा त्याग नहीं किया जा सकता क्योंकि सृष्टि का निमित्त कारण ईश्वर कार्य जगत् के सर्वाङ्ग में व्यापक है और प्रत्येक कार्य ईश्वर के साथ अन्वित है ।

महर्षिदयानन्द के अनुसार तो प्रत्येक सोम देवता वाला वेद मन्त्र सोम का ईश्वर अर्थ तो देगा ही उसका त्याग नहीं होगा । यह महर्षि की स्वकल्पना नहीं, आर्ष मान्यता है जो परम्परा से चली आ रही थी परन्तु बाद में लोग भूल गए थे । यास्क ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है—

'महाभाग्या द्देवतायाः एक आत्मा बहुधा स्तूयते । एकस्य आत्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति..........इत्यादि ।[2]

अर्थात् 'देवता का बड़ा ऐश्वर्य होने से एक आत्मा का बहुत प्रकार से वर्णन किया जाता है, एक आत्मा के ही अन्य देवता अंग प्रत्यङ्ग हो जाते हैं और नाना प्रकार के सामर्थ्य देखकर भी अनेक नामों से ऋषियों ने स्तुतियाँ की हैं और वह आत्मा समान रूप से सब पदार्थों में मूल कारण होने से सभी नाम उस महान आत्मा के ही होने सम्भव हैं । इस कारण से भी उसी एक आत्मा की नाना नामों से स्तुति की जाती हैं ।

इस प्रकार यह निश्चय हो जाता है कि सोम नाम परमात्मा का ही है । वस्तुतः सोम एक ऐसा तत्त्व है या जीवन तत्त्व है जो सृष्टि को सुन्दर, सुखद और मृदु बनाता है, जो पदार्थों को आर्द्र, स्वादिष्ठ और आरोग्यवर्धक बनाता है और जिसके कारण सर्वत्र क्षतिपूर्ति होती रहती है । इसीलिए सोम को रस कहा गया है । अध्यात्म में यह ब्रह्मानन्द रस ही है । गीता में भी यही बात कही गई है यथा—'सोमो भूत्वा रसात्मकः ।' अर्थात् परमेश्वर सोमरस होकर सर्वत्र विद्यमान है

---

१. निरुक्त अ. ५ या १-४ ।
२. निरुक्त दैवत काण्ड अ—१ पाद १

इत्यादि। परमात्मा रस भी है और रसाधार भी। उपनिषद् और वेद दोनों ऐसा वर्णन करते हैं। यथा—

रसो वै सः ।।तैत्तिरीय उ० २/७ ।।

और—रसेन तृप्तः न कुतश्चनोनः ।। अथर्व. १०-८-४४

अर्थात् परमात्मा रस है, रस से पूर्ण है उसमें कोई न्यूनता नहीं है, वह पूर्ण है इत्यादि।

'सोमं पिब वृत्रहन्' नारायणोपनिषद् पृ. २०० में सोम का अर्थ परमात्मा है।

यह सोमरस देवगण इन्द्र के पीने के लिए निचोड़ते हैं। इसे पीकर इन्द्र बलशाली होता है और वृत्र का वध करता है। वैदिक कर्मकाण्ड में इसका प्रतीकात्मक अभिनय किया जाता है, वहाँ पर लता काण्डों और जड़ीबूटियों का रस भेड़ के बालों से बने एक छन्ने से, जिसे दशापवित्र कहा जाता है, छाना जाता है, इस समय जो मन्त्र पढ़े जाते हैं उनमें से एक मन्त्र यह है—

पुनानः सोम जागृविख्या वारैः परिप्रियः।
विप्रोऽभवोऽङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञं मिमिक्षणः ।। —ऋ. ९-१०७-६

सायणाचार्य ने इसका अर्थ यूं किया है—

'हे सोम ! जागरण शील छाना जाता हुआ तू भेड़ के बालों से बने वस्त्रखण्ड पर बहता है। हे अंगिरों में श्रेष्ठ मेधावी ! तू पितरों का नेता होता है, वह तू हमारे यज्ञ को मधु अर्थात् अपने रस से सींचा। आचार्यसायण का यह अर्थ विद्यमान ओषधिरस के साथ संगत नहीं होता। वास्तव में यहाँ किसी अन्य सोम का ही वर्णन है। जो चेतन प्रतीत हो रहा है। यहाँ सोमरस जीवन तत्त्व का प्रतीक है, इन्द्र संयमी आत्मा है, यह दश प्राणों के संयम से जीवन तत्त्व को प्राप्त करता है और पाप रूप वृत्र का वध करता है। यह जीवन तत्त्व परमात्मा है, वही शक्ति का स्रोत है, वही ज्ञानवान् प्राणों का भी प्राण और अत्यन्त सुस्वादु है। इसे खाकर—अमृत अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है। इसका वर्णन वेद में इस प्रकार है—

अपाम सोमम् अमृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्।
किं नूनं अस्मान् कृणवदरातिः किम धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ।।

—ऋ. ८-४८-३

अर्थ—हम सोम का पान करें और अमर हो जावें। ज्योति अर्थात् ज्ञान को प्राप्त हों और देवों को प्राप्त करें अर्थात् विद्वानों का सत्संग सान्निध्य प्राप्त करें।

हे अमृत अर्थात् अमरण धर्मा परमात्मन् ! आन्तरिक शत्रु हमारा क्या करेंगे और मरणधर्मा जन की कुटिल चालें हमारा क्या लेंगी ? निश्चय ही कुछ नहीं कर सकतीं।

वेद में सोम को बुद्धिवर्धक, आयु प्रदाता, बलदाता, हर्ष, उल्लास और उत्साहवर्धक कहा गया है। पितरों अर्थात् ज्ञानी जनों का नेता कहा है, निश्चय ही वह परमात्मा ही हो सकता है। ऋग्वेद के आठवें काण्ड का ४८वाँ सूक्त और ९वें काण्ड के सम्पूर्ण मन्त्र सोम परमात्मा का वर्णन करते हैं। उक्त मन्त्र में जिस सोम का पान करके अमर होने की चर्चा है वह परमात्म रस के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। परमात्मा का उपासक, योगाभ्यास और विद्वानों के संसर्ग से ज्ञान, प्राण, वीर्य, यश आदि सभी अन्य सोम भी प्राप्त कर लेता है।

अब हम कतिपय ऐसे वेद-मन्त्र उद्धृत करते हैं जिनका देवता सोम है और सोम का अर्थ किसी भाष्यकार ने परमात्मा किया है। सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द[1] प्रणीत भाष्ययुक्त दोमन्त्र प्रस्तुत हैं।

१—वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः।
प्रजावन्तः सचेमहि ॥ —यजु. ३-५६

अर्थ—हे (सोम) चराचर जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता जगदीश्वर ! आपके (व्रते) सत्यभाषणादि धर्माचरण में वर्तमान हम लोग (तनूषु) विस्तृत सुखवाले शरीरों में (मनः) अन्तःकरण की अहंकारादि वृत्तिरूप मन को (बिभ्रतः) धारण और पुष्ट करते हुए तथा (प्रजावन्तः) उत्तम सन्तान और राष्ट्र नायक प्रजा वाले होकर (वयम्) हम लोग सब सुखों से (सचेमहि) संयुक्त रहें।

२—अंशुरंशुष्टे देव सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधनविदे। —यजु. ५-७

अर्थ—हे (सोम) सब पदार्थों के उत्पत्ति कर्त्ता (देव) दिव्य गुणों से युक्त ईश्वर ! आपका सामर्थ्य पुष्टिकारक औषधियों से प्रत्येक अंग को बढ़ाता है…… इत्यादि। अब पं आर्यमुनिकृत ऋग्वेद मंडल ९ के कुछ मन्त्र प्रस्तुत करते हैं जो सार्वदेशिक सभा द्वारा प्रकाशित ऋग्वेद हिन्दी भाष्य से लिए गए हैं।

३—बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे।
सोमाय गाथमर्चत ॥—ऋ. ९.११.४

अर्थ—हे मनुष्यो ! (बभ्रवे) जो विश्वम्भर परमात्मा है और जो (स्वतवसे) बलस्वरूप है और (दिविस्पृशे) जो द्युलोक तक भी फैला है। (सोमाय) जो चराचर

---

१. महर्षि ने संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण में प्रातःकाल पढ़े जाने वाले प्रथम मन्त्र प्रातरग्निम् में सोमम् का अर्थ प्रेरक अन्तर्यामी जगदीश्वर किया है।

जगत् का उत्पादक है (आरुणाय) जो सर्वव्यापक है उसके लिए ही (गाथम् अर्चत) स्तुतिगाया करो।

४—अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोमशंगवे।
देवेभ्यो अनुकामकृत्॥ —ऋ. ९.११.६

अर्थ—हे (सोम) परमात्मन्! (अमित्रहा) आप प्रेमरहित नास्तिकों के हनन करने वाले हैं (देवेभ्यो अनुकामकृत्) और दैवी सम्पत्ति के गुण रखने वाले लोगों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं क्योंकि (विचर्षणिः) आप न्यायदृष्टि से देखने वाले हैं (गवे) हमारी वृत्तियों (शं) पवित्रकर हमारा कल्याण करें।

५—स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभिनो ज्योतिषावीत्।
येना नः पूर्वेपितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभिगा अद्रिमुष्णन्॥
—ऋ. ९.९७.३९

(स सोमः) वह परमात्मा (वर्धिता) सबको बढ़ानेहारा (वर्धनः) स्वयं वर्धमान है (पूयमानः) शुद्ध स्वरूप (मीढ्वान्) सब सुखों का वर्षक (ज्योतिषा) अपने ज्ञान से (नः) हमारी (अभ्यावीत्) रक्षा करे जिस परमात्मा से (नः) हमारे (पूर्वे पितरः) पूर्व ज्ञानी जन (पदज्ञः) पदार्थवित् और (स्वर्विद) स्वतन्त्र सत्ता के जानकार (अद्रिमुष्णन्) अपनी चित्तवृत्तियों का निरोध करते हुए (अभिगाः) अभिमुख होते रहे हैं। इसके पश्चात् सामवेद के पवमान काण्ड के मन्त्र प्रस्तुत करते हैं जिनका भाष्य पं. जयदेव शर्मा विद्यालंकार ने किया है।

६—त्वया वयं पवमानेन सोमभरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथ्वी उतऽद्यौः॥

अर्थ—हे (सोम) जगदीश्वर! समस्त संसार को (पवमानेन) पवित्र करने हारे (त्वया) तुझ सहायक से फलप्राप्त करने हारे (वयम्) हम लोग इस जीवन में (शश्वत्) निरन्तर (कृतम्) अपने उत्तम किए कर्म ही विशेष रूप से संग्रह करें। स्नेहवान् (मित्रवरुणः) पापनिवारक (अदितिः) अखण्डनीय (सिन्धुः) सर्वव्यापक सबका आश्रय (पृथ्वी उतद्योः) पृथ्वी के समान सबका धारक और सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप हमें अभिलाषित फल प्रदान करें।[1]

७—स सुन्वे यो वसूनाम् यो रायानामानेता य इडानाम्।
सोमो यः सुक्षिनाम्॥—साम. ५.११.५ (पवमान काण्ड)

---

१. सामवेद (अख्यकाण्ड अ. ६ मं. ५)

अर्थ—(यः) जो (रायाम्) ऐश्वर्यों (यः वसूनाम्) जो समस्त प्राणों और सूर्यादिलोकों और (य इडानाम्) समस्त भूमियों ज्ञानधाराओं और अन्नों का (आनेता) प्राप्त कराने हारा है और (यः सुक्षीनाम्) जो उत्तम निवास योग्य शरीरों क्षेत्रों का नेता निर्माणकर्त्ता है (स सोमः) वह सबका प्रेरक परमात्मा (सुन्वे) हृदय देश में साक्षात् उपासना करने योग्य है ।

८—पवस्व मधुमत्तमः इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमोमदः ।
मेहि द्युक्षतमो मदः । साम. ५.११.१ (पवमान काण्ड)

अर्थ—हे (सोम) परमेश्वर ! (मधुमत्तमः) सर्वाधिक आनन्द व ज्ञान सम्पन्न ! (क्रतुवित्तमः) ज्ञान की प्राप्ति और कर्मों का ज्ञान करने कराने हारों में सबसे श्रेष्ठ ! (मदः) आनन्दस्वरूप आप (इन्द्राय) विभूति सम्पन्न आत्मा के लिए (पवस्व) प्रकट हों (द्युक्षतमः) आप सब दिव्यतेजों से युक्त पदार्थों में सबसे श्रेष्ठ और महान् हैं ।

९—स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।
इन्द्राय पातवे सुतः ।

अर्थ—हे (सोम) सबके प्रेरक ईश्वर ! आप (स्वादिष्ठया) अत्यन्त रसदायक (मदिष्ठया) अत्यन्त हर्ष या आनन्द कारक (धारया) अपनी धारण शक्ति से (पवस्व) सबमें व्यापक हो (इन्द्राय) इस आत्मा के लिए (पातवे) पान करने के लिए (सुतः) प्रादुर्भूत होवें ।

१०—यस्ते मदो वरेण्य स्तेना पवस्वान्धसा ।
देवावीरघ शंसहा ।। (साम. पू. पवमान काण्ड अ. ५.१.४)

अर्थ—हे सोम परमेश्वर ! (यः ते) जो तेरा (वरेण्यः मदः) श्रेष्ठ आनन्द या हर्ष प्रकाश (देवावी) देवों, विद्वानों, या इन्द्रियगण में प्रकट होता है और जो (अघ शंसहा) पाप की शिक्षा देने हारे दुष्ट पुरुषों या काम क्रोधादि दुष्ट भावों व अज्ञानादि का नाश करता है (तेन) उस (अन्धसः) प्राणशक्ति से (आपवस्व) हमें प्राप्त हो । इति

—सीतावाड़ी, पो. केलवाड़ा, जि. बाराँ—राज ३२५२१६

सोम का स्वरूप और औषधि की प्राप्ति

—आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री एम. ए.

'सोम' का वर्णन लगभग १२०० वेदमन्त्रों में बताया जाता है। यह यौगिक शब्द भ्वादिगणी (१) 'षु'=प्रसव (उत्पत्ति) और ऐश्वर्य, (२) 'षुञ्'=अभिषव (स्वादिगणी)—निचोड़ना और (३) 'षू'=प्रेरणा (तुदादिगणी) इन तीन धातुओं से उणादिगण-पाठ सूत्र 'अर्तिस्तु-सु हु सृ० (१.१४०) से 'मन्' प्रत्यय करने पर बनता है। उपर्युक्त तीनों धातुओं के अर्थों के अनुसार इस 'सोम' शब्द के ५० अर्थ वेद (ऋ=ऋग्वेद, य=यजुर्वेद, सा=सामवेद, अ=अथर्ववेद) के भाष्यों और ब्राह्मणग्रन्थों में किये गये हैं। इनको [१] आध्यात्मिक, [२] आधिभौतिक और [३] आधिदैविक—३ विभागों में बाँटा जा सकता है।

[१] आध्यात्मिक सोम

१. ईश्वर (य ३.५६, आर्या० य १.३८, ऋ १.९१, य ५.७, ऋ १.४३ ९ और सामवेद का पवमान पर्व आदि)
२. ऐश्वर्य (य १९.९५, ७.४, २६.२३, ऋ ५.४३.५)
३. अध्ययन-अध्यापन यज्ञ (य ७.३५)
४. सुख (ऋ १.२२.१)
५. शरीरात्मबल (य ३४.२१)
६. विद्या, योगाभ्यास और भक्ति (संस्कारविधि ऋ ९.११३.६)
७. सत्य, श्री, ज्योतिः (शत. ५.१.२.१०, ४.१.३.९
८. प्राणः (शत. ७.३.२.१.)
९. सर्वम् (श. ५.५.४.११, सर्वादेवताः १-६-३-२१)

[२] आधिभौतिक सोम

१०. विद्वान् (य २६.२५, ४.३७, ऋ १.९१.१६, १.८९.३,)
११. राजा (ऋ ४.२८.१, य ८.५०, ९.२६, ९.२३, १०.१८, ३४.२१)
१२. सेनापति (ऋ १.९१.२३)
१३. सभाध्यक्ष (ऋ १.४३.७, य ६.३३, १७.४०)
१४. वैद्य (ऋ १.९१.११, २.११.११)

१५. शिष्य (य ७.१४)
१६. ऐश्वर्ययुक्त गृहस्थ (य ८.२६, ८.१)
१७. संन्यासी (सं० विधि, ऋ ९.११३.४; १.११९.९)
१८. अध्यापक (य २५.१६, ३४.२१)
१९. उपदेशक (य २५.१६)
२०. व्यवहार (य २०.६३)
२१. वीररस (ऋ १.४७.३)
२२. सज्जन (ऋ ६.३४.४, १.४५.१०)
२३. न्यायाधीश (य ९.३१)
२४. न्याय (ऋ १.१३६.४)
२५. विवाहित प्रथम पति (ऋ. भा. भू. पृ. २१३, ऋ १०.८५.४०)
२६. सभासद् (य ७.२१, २१.४२, ऋ ४.१७.६)
२७. पितृलोक (कौशीतकी १६.५)
२८. पशुः (कौ. १२.६, तै. १.४.७.६)
२९. यजमानः (तै. १.३.३.५)
३०. क्षत्रम् (ऐत. २.३८)
३१. यशः (शत. ४.२.४.९, ऋ १०.७२.१०, ऐ. १.१३)
३२. रेतः (वीर्य)—कौ. १३.७, तै० १.६.२.२, ३.९.५.५

[२] आधिदैविक सोम

३३. चन्द्रमा (य १२.११२, ऋ ३.६२. १४, अ १४.१.५४)
३४. वायु (ऋ १.९३.५)
३५. विद्युत् (य ५.७)
३६. जल (ऋ ५.३४.३, १.१०८.४)
३७. संसार, उत्पन्न पदार्थ-समूह (ऋ ३.४७.३, २.१५.३, १.४६.१२) उत्पन्न जगत् । (ऋ १.२१.१, य १.३३., ऋ १.१६.३)
३८. धान्य आदि ऐश्वर्य (ऋ ४.३२.१७)
३९. ऐश्वर्यप्रापक अग्नि आदि पदार्थ (य ३३.१)
४०. विमान आदि यान (ऋ १.५.२)
४१. वृत्र (शतपथ ३.४.३.१३)
४२. संवत्सरः (तै० १.६.८.२, कौ० ७.१०)
४३. रात्रिः (शत० ३.४.४.१५)
४४. पर्ण 'ढाक का पत्ता' (शत० ६.५.१.१, पलाशः कौ० २.२)
४५. दधि 'दही' (तै० १.४.७.६)

४६. फलों का रस, पदार्थों का रस (ऋ ९.११३.१, ऋ १.१५५) अमृत रस (य ४.३१, १९.२५)

४७. नक्षत्र मंडल (अथर्व० ३.२७.३)

४८. ओषधियों का राजा (य ३.५६, ३४.२२, ऋ ३.५३.६, ३.५१.७, १.२८.९, य २८.२६, २९.४९, ऋ १.१८.५, ६.३४.४)

४९. अंशुमद् आदि नाम वाला २४ प्रकार का सोम (य १९.३३, २९.४९, १९.२१, ऋ ५.४३.५, नि० ११.२, वीरुधांपतिः तै० ३.११.४.१, गो० उ० १.११७, ऋ १.१८.५, य १९.१, ऋ ५.३४.२, ६.६९.६, य १२. २२; ८.५४; ९.३६; ३३.२५ ऋ ७.३२.८; १.५४.८ १.३७.३; १.११६. २४; य १२.९२; ऋ ६. ८१; य २०.९०)

५०. सोमवल्ली आदि से निष्पन्न आह्लादक आसव विशेष (य ८.१०)

सोम ओषधि

यहाँ हम ओषधिरूप विशिष्ट सोम के विषय में विचार करेंगे। सुश्रुत में सोम के २४ भेद बताये हैं। य० १०-३३ में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी उनका उल्लेख किया है। ये अंशुमान् आदि हैं। चरक के चिकित्सा स्थान अध्याय १ में सोम का वर्णन है। श्री दामोदर सातवलेकर ने दैवत संहिता में सोम के गुण, रूप और प्रयोगों का वर्णन किया है।

सुश्रुत के २९वें अध्याय में सोम के वर्णन का संक्षेप—

[१] २४ भेद— १—अंशुमान्; २—मुञ्जवान्; ३—चन्द्रमा; ४—रजतप्रभ; ५—दूर्वा; ६—कनीयान्; ७—श्वेताक्ष; ८—कनकप्रभ; ९—प्रतानवान्; १०—तालवृन्त; ११—करवीर; १२—अंशवान्; १३—स्वयंप्रभ; १४—महासोम; १५—गरुडाहृत; १६—गायत्र; १७—त्रैष्टुभ; १८—पाङ्क्त; १९—जागत; २०—शाक्वर; २१—अग्निष्टोम; २२—रैवत; २३—गायत्र्या त्रिपदा युक्तः (त्रिपदा गायत्री से युक्त) और २४—उडुपति।

[२] स्वरूप-सोम के पन्द्रह पत्ते क्रमशः एक-एक करके शुक्लपक्ष में बढ़ते हैं, पूर्णिमा को पन्द्रह हो जाते और कृष्णपक्ष में एक-एक कम होते हुए अमावस्या को बिलकुल समाप्त हो जाते हैं—केवल लता की डंडी रह जाती है। (यह बात अभी तक किसी प्रकार के सोम में कहीं नहीं मिली। केवल चन्द्रमा में घट-बढ़ होती है।)

सभी सोमों में दूध, कन्द और लता होती है। कुछ सोम, जैसे चन्द्रमा और कनकाभास, सुनहरी चमक वाले तथा सिन्धु नदी के पानी पर तैरने वाले होते हैं, कुछ वृक्षों पर लटकने वाले (पराश्रयी आरोही) और कुछ भूमि पर उत्पन्न होने वाले होते हैं। अंशुमान् में घी की सी सुगन्ध आती है। गरुडाहृत और श्वेताक्ष पीले रंग के होते हैं।

[३] उत्पत्तिस्थान—हिमालय (मुंजवान्) पर्वत; अर्बुद; सह्य; महेन्द्र; मलय; श्रोपर्वत; देवगिरि; देबसह; पारियात्र; विन्ध्य पर्वत और देवसुन्द भील; सिन्धुनदी तथा काश्मीर की क्षुद्रमानस भील—ये तेरह स्थान सोम की उत्पत्ति वाले बताये गये हैं।

यस्ते रसः सम्भृत ओषधीषु, सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्य ।
तेन जिन्व यजमानं मदेन, सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम् ।।
(यजुर्वेद, अध्याय उन्नीस, मन्त्र तेतीस)

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत अर्थ—

हे विद्वान्, जो तेरा सोमलता आदि ओषधियों में वर्तमान, सेवन किए हुए अंशुमान् आदि नाम से २४ प्रकार के सोम का सुरा=उत्तम दानशील स्त्री के द्वारा बनाया, ठीक रक्खा हुआ बलकारी आनन्ददायक रस है उस मदेन=आनन्दप्रद रस से सबको सुख देने वाले पुरुष को, प्रशस्त विद्या से युक्त स्त्री को, विद्या में व्याप्त अध्यापक उपदेशक को, ऐश्वर्य से युक्त सभापति और सेनापति को तथा अग्नि के समान, शत्रुओं के दाहक योद्धा को तृप्त कर ।।

सोम—याग

सोमम् राजानम् इह भक्षयामि ।। (यजु. १९.३४-३५)

मैं प्रकाशमान, पुरुषार्थ में प्रेरक सोम का भक्षण करूँ और कराऊँ ।।

शतपथ ब्राह्मण के तीसरे और चौथे काण्ड में सोम-याग के निरूपण में सोम के सम्बन्ध में अनेक महत्त्वपूर्ण बातें विदित होती हैं। कपड़ा बिछाकर सोम को रखकर उसे नापा और तोला जाता था और गठरी बाँधकर गाँठ लगा दी जाती थी। बेचने वालों से भावताव करके कला, शफ, पदाति, बकरी, गौ, वस्त्र, चाँदी, सोना आदि में से किसी एक को देकर खरीदा जाता था। थैले में लपेट कर गाड़ी पर रख कर यज्ञशाला में लाया जाता था। राजगद्दी पर बिठा कर राजा और अतिथि की तरह उसका सत्कार किया जाता था। सोम का रस निकालने के लिये उसे आठ या ग्यारह या बारह या चौबीस बार निचोड़ा जाता था। यह महा 'अभिषव' कहाता है। सोम के न मिलने पर उसके स्थान पर लाल और भूरे फूलों वाले दो प्रकार के फाल्गुन, या श्येनाहृत, आदारी, भूरी दूर्वा, या पीला कुश प्रयुक्त किये जाते थे। ताण्ड्य ब्राह्मण में उसके स्थान पर 'पूतिका' तथा 'अर्जुन' का प्रयोग करना बताया गया है।

सोमं मन्यते पपिवान् यत् सम्पिषन्ति ओषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्, न तस्याश्नाति कश्चन ।।

—ऋग्वेद, मंडल दस, सूक्त पिचासी, मन्त्र तीन

सोम को पीनेवाला उसकी ओषधि मानता है जिसको पीसते हैं। विद्वान् जिस सोम (परमात्मा, चन्द्रमा) को जानते हैं उसको कोई नहीं खाता।

इस मन्त्र से सोम को पीसकर उसका रस ओषधि रूप में पिया जाना प्रमाणित होता है।।

पारसियों के धर्मग्रन्थ 'जिन्द अवेस्ता' में भी सोम का वर्णन हाओमा नाम से किया गया है। आर्यों के सोमयाग 'अग्निष्टोम' और पारसी ईरानियों के 'हाओमा' में अद्भुत समानता है।

सोम पर वर्तमान खोज

१७८४ ई० में गीता के अनुवाद के साथ इंग्लैंड में सोम की खोज आरम्भ हुई। १८१४ में डब्ल्यू राक्सबर्ग ने, १८८१-८३ में प्रो० राथ ने, १८८५ में मैक्समूलर ने, १८८४ में ए० हाउडम शिन्डलर ने, फिर प्रो० स्पीगल, डा० हाग, डा. जी. वाट आदि ने सोम के सम्बन्ध में विचार किया और लेख लिखे। विभिन्न विद्वानों ने निम्नलिखित लगभग उनतीस पौधों या लताओं को सोम माना है—

१—रूटा ग्रेवियोलेन्स लिन (पंजाब में सिताब)

समर्थक—डब्ल्यू राक्सबर्ग—१८१४ ई. होर्टस बेंगालेनिसिस, कलकत्ता। १८२० ई. में सं. २ के पक्ष में विचार बदल दिया।

नादकर्णी—१९२७ ई. और ५४ ई. इंडियन मेटीरिया मेडिका, बम्बई।

आर. एन. चोपड़ा—५८ ई. इंडिजिनस ड्रग्स आफ इंडिया, कलकत्ता।

एस. के. जैन—६७ ई. वनस्पतिकोष, दिल्ली।

२—सारकोस्टेमा ब्रिविस्टिग्मा

(भावप्रकाश की सोमलता = गिलोय) समर्थक—डब्ल्यू राक्सबर्ग—१८२० फ्लोरा इन्डिका सीरामपुर चन्द्रराज भंडारी—१८४५ ई. वनौषधि चन्द्रोदय, ज्ञान-मन्दिर, इन्दौर, पृष्ठ २०२९

विलियम ड्वाइट व्हिटने—१८५३ ई. जर्नल आफदि।

अमेरिकन ओरियेंटल सोसायटी, नं. ३, पृ. २९९

एच ड्यूरी—१८५८ ई. यूजफुल प्लान्ट्स ऑफ इंडिया, मद्रास, पृ. ३८५

वाल्टर इलियट—१८५९ ई. फ्लोरा आन्ध्रिका, मद्रास। पृष्ठ १६९

बर्डवुड—१८६५ ई. कैटलाग ऑफ वेजिटेबल प्राडक्ट्स आफ बम्बई।

आर्थर कोक बर्नल—१८७४ ई. इलिमेण्ट्स आफ साउथ इंडिया, बंगलौर पृष्ठ १।

जी. एन. मुखोपाध्याय—१९११ ई. हिस्ट्री आफ इंडियन मेडिसिन, कलकत्ता।

एन. एन. सेनगुप्ता—२६ ई. आयुर्वैदिक सिस्टम आफ मेडिसिन कलकत्ता।
शालिग्राम वैद्य—५३ ई. शालिग्राम निघण्टु भूषणम्, बम्बई।
गंगासहाय पाण्डेय—६९ ई. भावप्रकाश निघण्टु, बनारस।
३—सारकोस्टेमा विमिनालिस अथवा ऐस्क्लेपियस एसिडा। समर्थक—मोनियर विलियम्स (डिक्शनरी)
जान स्टीवेन्सन १८४२ ई. संहिता आफ सामवेद, लन्दन।
डा. वाट (१९०८)
४—सारकोस्टेमा ऐस्क्लीपियाडा सी—मदारकुल।
समर्थक—
हरमैन ग्रासमैन—१८७३ ई. वार्टरबुश जुइन ऋग्वेद—लीपजिग।
डा. वाट—१९०८ ई. ग्लासरी आफ इन्डियन मेडिसिनल प्लान्ट्स।
दि एन्टिक्विटी आफ सम फील्ड ऐंड फारेस्ट फ्लोरा आफ इंडिया।

५—सारकोस्टेमा इन्टरमीडियम डेक्ने। समर्थक—मार्टिन हाग—१८७५ ई.।

इस प्रकार सारकोस्टेमा के चार भेद हुए।

६—एफेड्रा पैकिक्लाडा बौस (ग्नेटेसी)—वेदों का सोम (यह हिन्दूकुश, सफेद कोह तथा सुलेमान रेंज में मिलता है।) समर्थक—

डा. एन. ए. काजिल्वास, पेशावर यूनीवर्सिटी—६० ई.। दि फार्मेस्युटिकल जर्नल पृष्ठ, ४९७—५०१।

७—एफेड्रा वल्गेरिस हुक एफ (चीनी नाम 'माँ हुआँग')—इसे 'टुटगंठा' कहते हैं। समर्थक—श्री यादवजी त्रिक्रमजी ने 'द्रव्यगुणविज्ञान' में व आयुर्वेद महा-सम्मेलन पत्रिका में सोम माना है।

श्री के. सी. बोस—३२ ई. दि फार्मोकोपिया आफ इन्डिया—कलकत्ता।

श्री कीर्तिकर और वसु—३५ ई. इण्डियन मेडिसिनल प्लान्ट्स—इलाहाबाद।

८—एफेड्रा जिरार्डियाना वाल। (यह चकरौता के ऊपर 'देववन' में मिलता है।) समर्थक—

श्री चन्द्रराज भंडारी—४५ ई. वनौषधिचंद्रोदय

नादकर्णी और नादकर्णी—५४ ई. इन्डियन मेटीरिया मेडिका, बम्बई—पृष्ठ ११०६।

ई. एफ. स्टीनेट्ज—५७ ई. कोडेक्स वेजिटेबिल्स एम्सटर्डम।
डा. मायर्स

श्री गंगासहाय पांडेय—६९ ई. (भावप्रकाश निघण्टु)।

९—एफेड्रा (एस पी) सिमिका स्टाफ। समर्थक—

मैक्समूलर—१८५५ ई. जर्नल आफ जर्मन ओरियेंटल सोसायटी।

जी. वाल—१९०८ ई. दि कार्माशियल पीरियाडिकल्स आफ इन्डियन हर्बस—लन्दन

जे. सी. श्रीवास्तव—७० ई. जनरल आफ क्रूड ड्रग्स, वाल्यूम १०, पृष्ठ १५।

आई. आई. चौधरी—५७ ई. इकोना आर्ट २, पृष्ठ २५७-६२।

सचित्र आयुर्वेद—मई ६६

१०—एफेड्रा डिस्टाच्या लिन। समर्थक—

जे. बी. मूलर—१८५३ ई.

११—एफेड्रा नेब्रोडेन्सिस टिनिओ। समर्थक

चोपरा—१९५८ ई. इंडिजनस ड्रग्स आफ इंडिया, कलकत्ता।

शाह और शाह—६६ ई. इंडियन जर्नल आफ फारमेसी २८, पृष्ठ १०३-१०५।

गंगासहाय पांडे—६९ ई. भावप्रकाश निघण्टु।

१२—एफेड्रा इक्विस्टिमा बंज। समर्थक—

देवीशरण गर्ग—७१ ई. धन्वन्तरि भाग ६, अलीगढ़।

यह और संख्या ९ एफेड्रा सिमिका स्टाफ—ये दोनों चीन के हैं जबकि संख्या ८ एफेड्रा जिरार्डियाना भारत का है। इस प्रकार एफेड्रा के ७ भेद हुए। इसी से दमा की प्रसिद्ध औषधि एफेड्रीन बनती है।

सिरोपिजिया आदि सोम

१३—सिरोपिजिया जूनिसिया (मदार कुल)

केरल में सोम नाम से प्रसिद्ध। समर्थक—

डा. उस्मानअली, विजयनारायण और नारायण स्वामी—७० ई. जर्नल आफ रिसर्च इन इंडियन मेडिसिन ३—१, पृष्ठ १०६—११०।

१४—सिरोपिजिया डिकाइस नियाना। समर्थक—

आर्थर कोक बर्नेल—१८७४ ई. इलीमेन्ट्स आफ साउथ इंडिया पेलियो-ग्राफी, बंगलौर, पृष्ठ एक। —पेरिप्लोका अफायलला डेक्ने।

१५ (पंजाब में 'बरी', बम्बई में 'बुराये', अफगानिस्तान में 'होमा', 'हुआ'। यह झेलम से लेकर बिलोचिस्तान तक मिलता है। समर्थक—

डा. जी. वाट—१८८९-९३ ई., ए डिक्शनरी आफ इकान प्राडक्ट्स आफ इण्डिया—कलकत्ता।

जे. ई. टी. ऐटचिंजन—१८८८ ई.

कीर्तिकर और वसु—१९३५ ई. इंडियन मेडिसिनल प्लान्ट्स, इलाहाबाद।

चन्द्रराज भंडारी—४५ ई. वनौषधि चन्द्रोदय।

१६—काकुलस हिसिसुटस (एल) डील्स (जलजमनी) समर्थक—अमरकोष, बम्बई—१८९५ ई.।

१७—काकुलस कार्डिफोलियस डि टिनोस्पोरा कार्डिफोलिया मियर्स (गिलोय)। समर्थक—

आर. एन. खोरी—१९०३ ई. मेटीरिया मेडिका आफ इन्डिया ऐंड देयर थेराप्यूटिक्स—बम्बई।

नादकर्णी—५४ ई. इन्डियन मेटोरिया मेडिका।

अत्रिदेव विद्यालङ्कार—६० ई. आयुर्वेद का वृहत् इतिहास।

१८—सिटारिया ग्लाका बेऔस। ग्रामिनी फाक्सटेल।

समर्थक—जे. एफ. डूथी—१९०३ ई. फ्लोरा आफ अपर गैंगेटिक प्लेन्स—कलकत्ता।

१९—इल्यूसाइन कोराकाना गाएर टीन (रागी)।

समर्थक—ई. बी. हैवेल—२० ई. जे. आर. ए. एस. पृष्ठ ३४९।

नादकर्णी—५४ ई. इन्डियन मेटीरिया मेडिका—बम्बई

२०—कैनाबिस इन्डिका (भाँग) समर्थक—

बी. एल. मुखर्जी—२१-२२ ई. जे. आर. ए. एस. पृष्ठ दो सौ इकतालिस।

२१—सेन्टेला एशियाटिका एल, अरबन अमबेली फेराई। (ब्राह्मी) और

२२—हाइड्रोकोटायल रिटंडीफिलया राक्स बी

(मण्डूकपर्णी)। दोनों के समर्थक—

सी. चक्रवर्ती—२३ ई. ए. कम्पैरेटिव हिन्दू मैटीरिया मेडिका—कलकत्ता।

२३—रियूम एस. पी. पोलोगोना सी—(रेवन्दचीनी)

समर्थक—श्री आरेल स्टीन—३१ ई. बुल आफ दि लन्दन स्कूल आफ ओरियेंटल स्टैंडर्ड।

२४—एलियम गोवेनिमानम (वाल नोमेन एक्स एच. के. एफ. लिलि सी) जम्बू।

२५—एलियम स्ट्राचेयी बेकर=जम्बू। यह तिब्बत के क्यूनल पर्वत पर (जो 'मौञ्जवान्' है) पैदा होता है। और ऊँचे मूल्य पर बिकता है। समर्थक—आग्रहायण, लखनऊ—वर्ष ३, पृष्ठ ग्यारह। १९६७

२६—क्रिनम एशियाटिकम लिन, एमारिल्ली (सुवर्सन)

समर्थक—प्रियव्रत शर्मा—६९ ई. द्रव्यगुण विज्ञान—वाराणसी।

२७—डियासकोरिया बुलबीफेरा, लिन—(वाराहीकन्द)।

समर्थक—सी. आर. कार्मिक—६९ ई. क्वार्टर्ली जनरल आफ क्रूड ड्रग रिसर्च (पृष्ठ १४७८-७९)।

२८—फ्लाई अगेरिका जाति का अमानिता मस्कारिया (खुम्म-खुम्मी) यह सूर्य और अग्नि के समान लाल होता है। यह अफगानिस्तान से लेकर उत्तरी सायबेरिया तक मिलता है। समर्थक—

श्री रिचार्ड गार्डन वासन—१९६९-७२ ई.

पन्द्रह वर्ष अनुसंधानकर्ता कबक—शास्त्री अमरीका हरकर्ट ब्रेस्ड ऐंड बर्ड, न्यूयार्क—६९ ई.

बोटेनिकल म्यूजियम हारवर्ड यूनीवर्सिटी—७२ ई.

डैनियल एच. एच, इंगाल्स—७१ ई. जे. ए. ओ. एस. ९१.२ पृष्ठ १८८।

श्री निरंजनचन्द्र शाह, लखनऊ—धर्मयुग ३ जून—७०, सचित्र आयुर्वेद, जुलाई—७२ तथा सितम्बर—७७ ई.।

इसके सोम होने का विरोध—(१) प्रो. जान ब्रो. (कैम्ब्रिज) और (२) श्री प्रभुलाल याज्ञिक, जामनगर आयुर्वेद. भाग दस, नम्बर चार, ७३ ई. ने किया।

२९—पैनेक्स शेन शु ंग (अरालिया सी कुल) चीनी जिनसेंग—इसकी जड़ में सोम के सभी गुण हैं। यह चीन से अमरीका व रूस जाता है।

समर्थक—प्रो. विनोदप्रकाश उपाध्याय—आयुर्वेद महाविद्यालय गुरुकुल कांगड़ी। वैदिक पथ गुरुकुल पत्रिका—७५ ई. पृ. १८९ पौष २०३१ वि.।

उपाध्यक्ष विश्ववेद-परिषद्, सी सेक्टर, महानगर, लखनऊ

सोम की ऊर्ध्व गति और महत्ता

—मनोहर विद्यालङ्कार

अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति स्वयुग्वभिः सूरो न स्वयुग्वभिः।
धारा सुतस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः।
विश्वा यद्रूपा परियाति ऋक्वभिः सप्तास्येभिः-ऋर्क्वभिः ॥१॥

त्वं त्यत्पणीनां विदो वसुसंमातृभिर्मर्जयसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे।
परावतो न साम तद् यत्रा रणन्ति धीतयः।
त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥२॥

पूर्वामनु प्रदिशं याति चेकितत् सं रश्मिभिर्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः।
अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन्।
वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वन पच्युता ॥३॥

ऋषिः—अनानतः पारुच्छेपिः। देवता—पवमानः सोमः। छन्दः—अत्यष्टि। ऋक् ९-१११—१ से ३।

इन मंत्रों का शब्दार्थ इस प्रकार है—यह पवमान सोम (अया हरिण्या रुचा) इस हरित वर्ण दीप्ति से (अरुषः) दीप्त तथा (हरिः) रोगों और दुःखों को हरने वाला (स्वयुग्वभिः) स्वप्रयुक्त दीप्तियों से (पुनानः) पवित्र होकर गति करता हुआ (विश्वा द्वेषांसि तरति) सब द्वेषादि दुष्ट भावों को वैसे ही तर जाता है, नष्ट कर देता है (न) जैसे (सूरः) सूर्य (स्वयुग्वभिः) स्व-प्रसृत किरणों से सब अन्धकारों को नष्ट कर देता है, अथवा जैसे (सूरः) शूर योद्धा (स्वयुग्वभिः) अपने तेजों से (विश्वा द्वेषांसि तरति) अपने सब शत्रुओं को नष्ट कर देता है। यह सोम जब (सप्तास्येभिः ऋक्वभिः) सात मुख रूपी इन्द्रियों द्वारा (विश्वारूपा) सब विषयों को (परियाति) वैसे ही व्याप्त कर लेता है जैसे (सप्तास्येभिः ऋक्वभिः) सात मुखरूपी छन्दों से प्रकट ऋचाओं द्वारा वेद, विश्व के सब रूपात्मक ज्ञान को व्याप्त कर लेता है। उस समय (सुतस्य धारा रोचते) प्रस्रवित होते हुए इस सोम की धारा, प्राणी को खूब उत्साहित और आनन्दित करती है।१।

हे सोम ! (त्वम्) तू (पणीनां वसु) व्यवहार कुशलजनों द्वारा राग द्वेषादि के समर्थन द्वारा अपहृत वसु-धन को (मातृभिः धीतिभिः) निर्मात्री तथा धात्री

शक्तियों द्वारा (स्वे दमे) अपने शरीर रूपी गृह को (मर्जयसि) शुद्ध कर लेता है और शरीर को निवास योग्य बनाने वाले सामर्थ्य को (विदः) पुनः प्राप्त कर लेता है; जैसे (दमे) संयम में निवास करने वाले योगी साधक (ऋतस्य-धीतिभिः) नियम पालन की धात्री शक्तियों द्वारा अपने अन्तःकरण को शुद्ध करके परम-वसु परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं। वह परमात्मा (परावतो न साम) दूर से सुनाई देने वाले साम घोष के समान मनोरम है; (यत्रा रणन्ति धीतयः) जिस परमात्मा में ध्यानी जन आनन्दित होते हैं। उस स्थिति में पहुँच कर (त्रिधातुभिः अरुषीभिः) वात, पित्त, कफ अथवा शरीर, मन, आत्मा तीनों को धारण कराने वाली दीप्त शक्तियों द्वारा (रोचमानः) आरोचमान साधक (वयो दधे) अपने जीवन को निरायास धारण करता है, जैसे (रोचमानः) सूर्य (त्रिधातुभिः अरुषीभिः) त्रिलोकी को धारण कराने वाली अपनी प्रदीप्त किरणों द्वारा (वयो दधे) प्राणी मात्र के जीवन को धारण करता है।२।

यह सोम (रश्मिभिः) शरीर व्यापिनी शक्तियों द्वारा (चेकितत्) शरीर की चेतना को चेतन करता हुआ (पूर्वादिशं अनुप्रयाति) आगे बढ़ने वाली प्राची दिशा की ओर चलता है। परिणामस्वरूप प्राणी का (रथः) देहरूप रथ (दर्शतः) दर्शनीय हो जाता है, यदि वह (संयतते) संयमपूर्वक चलता रहे, जैसे (दैव्यः रथः) सूर्य का दिव्य रथ संयत गति के कारण (दर्शतः) सदा दर्शनीय रहता है और सम्पूर्ण जगत् में चेतना उत्पन्न करता है। इस सोम द्वारा उत्पन्न (उक्थानि पौंस्या) प्रशंसनीय पुरुषार्थ (इन्द्रम्) ऐश्वर्य सम्पन्न प्राणी को (जैत्राय हर्षयन् अग्मन्) विजय प्राप्ति के लिये उत्साहित और हर्षित करते हुए गतिमय बने रहते हैं। और उसका शरीर कर्मण्यता के कारण (वज्र) वज्र तुल्य बन जाता है। इस प्रकार यह वीर्यवान् सोम = इन्द्र और इसका वज्र तुल्य शरीर दोनों (समत्सु) संघर्षों और संग्रामों में (अनपच्युती) बाह्य तथा अन्तर दोनों शत्रुओं से अपराजित रहते हैं (अनपच्युतौ) निश्चय ही अपराजित रहते हैं।३।

निष्कर्ष—पवमान सोम-क्षरित होता हुआ वीर्य, प्राणी को कर्मण्य तथा चैतन्य बनाता है, हर्षित (मस्त) रखता है, और आनन्द प्रदान करता है। यह इसका स्वभाव है। यदि इसे शरीर से बाहर निकालें तो भी आनन्द देता है, किन्तु यह आनन्द और मस्ती क्षणिक हैं, और इसके साथ शक्ति भी क्षरित हो जाती है। यदि इसे शरीर में ही खपा दिया जाए तो यह चिरस्थायी आनन्द प्रदान करता है, और शक्ति भी कायम रहती है।

यह सोम (वीर्य) सूर्य की तरह निराशा की बदलियों को छिन्न-भिन्न करता है। द्विविधा के अन्धकार को नष्ट करके मार्ग को प्रशस्त करता है।

इस सोमपान (वीर्यरक्षा) से देहरथ दिव्य बन जाता है और जीवन यात्रा सुगमता से पूर्ण होकर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेती है।

जैसे सामध्वनि मनुष्य को मन्द-मन्द मोद प्रदान करती है, वैसे ही सोमपान से मस्त मनुष्य स्वात्मानन्द में गुनगुनाता रहता है।

यह अन्तर्युक्त सोम सातों ऋषियों (इन्द्रियों) को व्याप्त करके उन्हें सशक्त तथा सातों मुखों से भोग करने वाला भोक्ता बना देता है। उसकी कोई इन्द्रिय जीवन पर्यन्त अक्षम नहीं होती।

यह सोम, वात, पित्त, कफ तीनों धातुओं को समस्वर बनाये रखता है। शरीर, मन, आत्मा तीनों को धारण करके, प्राणी के जीवन को स्पृहणीय, आशावादी तथा आनन्दित बनाये रखता है।

सोम का अन्तर्भोग, सोमपायी इन्द्र को सदा हर्षित रखता है, इसके शरीर को वज्र तुल्य बना देता है। परिणामतः दोनों ही जीवन में अपराजेय बने रहते हैं।

आधिभौतिक दृष्टि से समाज या राष्ट्र में स्वास्थ्य विभाग का अध्यक्ष ही सोम देवता है। उसके दो सहायक विभाग हैं—चिकित्सा और शल्य क्रिया। इन्हें पृथक्-पृथक् अश्विनी संभालते हैं।

'सोमो वनस्पतीनां मित्रः। यजुः ९-३९ और सोमो वीरुधामधिपतिः। अथर्व ५-२४-७ दोनों प्रमाण सोम के स्वास्थ्य विभागाध्यक्ष होने की पुष्टि करते हैं।

आधिदैविक दृष्टि से सोम चन्द्रमा है। औषधि वनस्पतियों में इसी के द्वारा रस शान्तिदायक बनते हैं। सूर्य जीवनी शक्ति का निर्माता है, और चन्द्रमा शान्ति-दायक रसों का उत्पादन करता है।

जैसे शरीर में सोम (वीर्य) जीवनी शक्ति और शान्ति को स्थिर करके आनन्द प्रदान करता है, वैसे राष्ट्र में स्वास्थ्य विभाग जीवन के लिए आवश्यक जलवायु की आपूर्ति करता है, और उन्हें प्रदूषण रहित करके जनता के सुख और आनन्द की वृद्धि करता है। शरीर में प्राणापान ही अश्विनौ हैं।

आधिदैविक जगत् में चन्द्रमा के समान सोम औषधि भी औषधियों में सर्वश्रेष्ठ है। यह नपुंसक को भी पौरुष प्रदान करती है। "त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमाधिश्रुता स्योषधे। इमं मे अद्य पूरुषं क्लीबमोपशिनं कृधि ।। अथर्व ६-१३८-१"

आध्यात्मिक दृष्टि से शरीर में पान (रक्षण) किया हुआ सोम (वीर्य) रोगों के आक्रमण को निरर्थक करके, मनुष्य को आनन्दित करता है।

"अपाम सोमममृता अभूम, किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः।"

ऋक् ९-४८-३

'इन्द्र' ते रसो मदिरो ममत्तु।

ऋक् ९-९६-२१

विशेष—सूक्त के ऋषि, देवता और छन्द से ग्रहण करने योग्य संकेत। सामान्य जन छन्द के शब्दार्थ में निर्दिष्ट उपाय को अपना साधन बना ऋषि तुल्य आचार वाला बन सकता है। ऋषि तुल्य बनने के बाद मन्त्र के देवता का सखा बनकर उसकी कृपा प्राप्त करना सुगम हो जाता है। इसी तरह देवता की कृपा प्राप्त किये बिना ऋषित्व पूर्ण नहीं होता।

पारुच्छेपिः अनानतः—अर्थात् पोर पोर में निर्मात्री शक्ति को संगृहीत करके अपने व्रत (निश्चय) या स्वीकृत मन्तव्य पर अविचल रहने वाला; दूसरे शब्दों में किसी प्रलोभन या भय के दबाव से अपने व्रत को न छोड़ने वाला ऋषि ही आनन्द और शान्ति के देवता सोम का सखा बनकर, उसका कृपापात्र बनता है।

इसी तरह जिसने सोम को सिद्ध नहीं किया अर्थात् उसका अन्तर्भोग (पान) नहीं किया अथवा जिस पर सोम की कृपा नहीं हुई; वह अनानत—अविचल—अथर्वा या दृढ़ संकल्प नहीं बन सकता है और उसके परु परु (पोर-पोर) में निर्मात्री शक्ति प्रशस्त नहीं हो सकती।

इस मन्त्र का छन्दार्थ संकेत करता है कि कर्मण्यता द्वारा दीप्ति ग्रहण करने का इच्छुक ही अनानत और पारुच्छेपि बनता है।

सोम की महत्ता

अग्नि और इन्द्र के समान वेद में सोम देवता की भी प्रधानता है। सोम देवता के लगभग १२५० मन्त्र हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों के 'सर्वं हि सोमः' तथा सोमः सर्वा देवता इति' वाक्य स्पष्ट रूप में इसके महत्त्व को प्रदर्शित करते हैं।

सोम शब्द की जो व्युत्पत्तियां उपलब्ध हैं, उनके आधार से प्रत्येक वस्तु को सोम कहा जा सकता है, इसलिए सोम के सम्बन्ध में बहुत मतभेद रहे हैं। वेद के शब्द यौगिक होने से नाना पदार्थों के वाचक होते हैं, किन्तु वेद का अध्ययन करने वाले विद्वान् अपनी गुरु परम्परा, अपने ज्ञान के विस्तार और अपनी सूझबूझ के द्वारा एक शब्द का जो अर्थ ग्रहण या स्वीकार कर लेते हैं; वे वेद में आए सब प्रसंगों में उसी अर्थ को लगाने का प्रयत्न करते हैं, और परिणामतः विवाद और भ्रम प्रारम्भ हो जाता है।

सोम शब्द के अर्थों पर विचार करते हैं:—

१. सोमः—सुवति ऐश्वर्यहेतुर्भवति। उणादिकोष १-१४०, ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले या ऐश्वर्य का कारण बनाने वाले सब पदार्थ सोम शब्द से पुकारे जा सकते हैं।

२. सोमः—षुञ् अभिषवे। जो व्यक्ति अभिषव करता है—लकड़ी से मेज, लोहे से कुदाल, मिट्टी से घड़ा बनाने वाले बढ़ई, लुहार और कुम्हार सोम कहलाते हैं।

जो वस्तु अभिषव (संस्कृत करके बनाई जाने वाली वस्तु) की जाती है जैसे मेज, कुदाल और घड़ा भी सोम कहाते हैं।

३. सोमः—षू प्रेरणे। प्रेरणा देने वाले परमात्मा माता-पिता, गुरु, उपदेशक, राजा आदि सोम कहलाते हैं। और प्रेरणा ग्रहण करने वाले मनुष्य, सन्तान, शिष्य, श्रोता, प्रजाजन भी सोम कहाते हैं।

४. सोमः—षु प्रसवैश्वर्ययोः। किसी वस्तु को उत्पन्न करने वाले अथवा किसी प्रकार का ऐश्वर्य सम्पादन करने वाले—परमात्मा, राजा, माता-पिता,

किसान, श्रमिक, सब सोम हैं। इसी प्रकार इनके द्वारा उत्पन्न पदार्थ या ऐश्वर्य, ब्रह्माण्ड तथा उसके सब पदार्थ, राष्ट्र की सब प्रजा या ऐश्वर्य, सन्तान, कृषि से उत्पन्न सब अन्य, तथा श्रम द्वारा उत्पन्न सब पदार्थ भी सोम हैं।

उपर्युक्त व्युत्पत्तियों के आधार पर भिन्न-भिन्न कोषों में तथा वेद भाष्य-कारों ने सोम शब्द के जो अर्थ किये हैं उन में से कुछ नीचे दिये जाते हैं:—

(क) न्यायाधीश, राजा, परमात्मा, सज्जन, उपदेशक, गृहस्थ, इन्द्र, यजमान, ब्राह्मण, वैद्य, सेनाध्यक्ष, विद्वान्, सभाध्यक्ष, विष्णु, वायु, प्रजापति, क्षत्र।

(ख) चन्द्रमा, रात्रि, आपः (जल) रस, रेतस् (वीर्य), राजपेय, मधुरपेय, संवत्सर, ऋतुएं।

(ग) सत्य, श्रीः, ज्योतिः, प्राण, राज्य, यश, वर्चस्,

(घ) पयः, दधि, पलाश, पर्ण, अन्न, हवि,

विदेशी विद्वानों ने सोम को किसी न किसी पेय के रूप में माना है। श्री ए. बी कीथ ने सोम का अर्थ सुरा सदृश मादक द्रव; श्री वाट ने अफ़गानिस्तानी द्राक्षा का आसव; श्री रायस ने गन्ने का रस; श्री हिल ब्रान्ट ने एक प्रकार का मधु अथवा सर्वोत्तम पेय स्वीकार किया है।

स्वामी दयानन्द ने—चराचर का उत्पत्तिकर्त्ता जगदीश्वर, विद्वान्, ऐश्वर्य सम्पन्न राजा, सेनाध्यक्ष, प्रशस्तगुण शिष्य, रक्षक, ऐश्वर्यसम्पन्न गृहस्थ, ऐश्वर्यकारक ओषध, प्रेरणादायक व्यवहार, वेदशास्त्रज्ञान, जल, औषध आदि सब क्षेत्रों में लगने वाले अनेक अर्थ किये हैं।

श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने लिखा है कि जब कारीगर सोम होगा तो उसकी कारीगरी सोमरस कहाएगी। ब्रह्मा जब सोम होगा तो ब्रह्मज्ञान सोमरस होगा। जब वैद्य सोम होगा तो उसकी चिकित्सा सोमरस होगी। पिता सोम होगा तो सोमरस सुत होगा। इस परम्परा को सब क्षेत्रों में इसी प्रकार जानना चाहिये।

इतना विचार करने के बाद यही ठीक प्रतीत होता है कि 'सर्वं हि सोमः' सभी कुछ सोम है। इसलिये प्रकरणवश और बुद्धिपूर्वक सोम का कुछ भी अर्थ किया जा सकता है। सबका प्रतिनिधित्व करने वाले सोम देवता के कुछ मन्त्र-भागों का दिग्दर्शन करते हैं जिससे सोम के अनेक स्वरूपों की झलक मिल सके।

सोम देवता के मन्त्र

१. ऋषिमना य ऋषिकृत् स्वर्षाः सहस्रणीथः पदवी कवीनाम्।

ऋक् ९-९६-१८

यह सर्वप्रेरक सोम, सर्व दर्शनशील मन वाला, सबको ज्ञान और मनन देने वाला, सबका सुखप्रदाता, बहुविध नियमों और नीतियों का प्रवर्तक तथा विद्वान् कवियों का मार्गदर्शक है।

२. त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे। ऋक् १-९१-६

हे सोम! जब तक तू हमें जीवित रखना चाहता है, हम मर नहीं सकते। इस विश्वास के साथ किसी शक्तिशाली के भय से कभी सुपथ को त्यागना उचित नहीं।

३. उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम निपाह्यंहसः। सखा सुशेव एधि नः।
ऋक् १-९१-१५

हे सोम आप हमारी हिंसा से रक्षा करें और पापकर्म करने से बचावें; आप हमारे मित्र हैं, इसलिये हमें सुख प्रदान द्वारा बढ़ावें।

४. देव सवितः सोम राजन् सुमनसं मा कृणु स्वस्तये। अथर्व ६-९९-३

सब को उत्पादन में (जीविका) लगाकर शान्ति चाहने वाले राजन्! मुझे स्वस्थ तथा सुन्दर मन वाला बना, जिससे मैं अपनी और दूसरों की स्वस्ति के लिये प्रयत्नशील रह सकूं।

५. त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नधायतः। न रिष्येत्त्वावतः सखा।
ऋक् १-९१-८

हे सर्वप्रेरक राजन्! पाप तथा अपराध करने वालों से हमारी सब प्रकार रक्षा करें; क्योंकि हम आपके सखा बनने का निरन्तर प्रयत्न कर रहे हैं। और आप जैसे सर्वशक्तिमान् के मित्र की हिंसा करने का किस में सामर्थ्य है।

६. सोमो यः सुक्रतुः कविः। ऋक् ९-१२-४

उत्तम कर्म अथवा यज्ञ में व्यस्त रहने वाला कर्मठ और विद्वान् ही सोम कहलाने का अधिकारी है।

७. सोमो वधूयुरभवत्। अथर्व ४-१-९

कर्मठ तथा विद्वान् बनने के बाद ही स्नातक (सोम) को वधू की कामना करने का अधिकार है।

८. त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमाभिश्रुता-स्योषधे।

इमं मेडध पुरुषं क्लीबमोपशिनं कृधि ॥ अथर्व ६-१३-८१

हे सोम ओषधे! तू सब लताओं में श्रेष्ठ मानी गई है। इसलिये तू मेरे

इस नपुंसक पुरुष को स्त्री के साथ आनन्दपूर्वक शयन करने वाला बना दे। आ समन्तादुपशेते इति तद्वान्।

९. दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे। सुनोता मधुमुत्तमम्।

ऋक् ९-५१-२

हे अंगिरस जन ! द्युलोक के उत्तम पेय मधु अमृत को, वज्रतुल्य कठोर अंग वाले इन्द्र के लिये निचोड़ कर निष्पन्न करो।

१०. त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं विचिनुयाम शश्वत्।

ऋक् ९-८७-५८

हे सोम ! प्रगति और पवित्रता दायक तेरी कृपा से हम सदा इस जगत् में अपने किये कर्मों के अनुसार उत्तम फल प्राप्त करते रहें।

११. मोषुणः सोम मृत्यवे परादाः पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्।
द्युभिर्हितो जरिमा सूनो अस्तु परातंर सुनिर्ऋतिर्जिहीतामा।

ऋक् १०-५९-५

हे सोम ! हमें मृत्यु के समीप मत पटक। ऐसी कृपा कर कि हम उदय होते हुए सूर्य को प्रतिदिन देखते रहें। गुजरते हुए दिवसों के कारण अनिवार्य रूप से विहित वार्धक्य हमारे लिये सुखकर हो। पाप देवता या मृत्यु हम से दूर-दूर होता जाए। (यदि हम सूर्योदय से पहले उठेंगे, और पापकर्मों को अपने से दूर रखेंगे तो वार्धक्य सुखमय व्यतीत होगा)

१२. अस्मे वसूनि धारय सोम दिव्यानि पार्थिवा। इन्दो विश्वानिवार्या।

ऋक् ९-६३-३०

हे ऐश्वर्यशालिन् सोम ! पृथिवीलोक और द्युलोक में प्राप्य सब प्रकार की श्रेष्ठ तथा वरणीय वास सामग्रियां प्रदान कर हमारे शरीर और मस्तिष्क को दृढ़ तथा पवित्र बना।

१३. एवा पुनानो अपःस्वर्गा अस्मभ्यं तोका तनयानि भूरि।

शं नः क्षेत्रमुरू ज्योतींषि सोम ज्योङ्‌ नः सूर्यं दृशये रिरीहि।।

ऋक् ९-९१-६

हे सोम ! सुख प्राप्त कराने वाले हमारे कर्मों को इस प्रकार पवित्र कर, ताकि हमें सब प्रकार का सुख, गौएं, पौत्र, प्रभूत मात्रा में प्राप्त हों। हमारा कार्यक्षेत्र खूब विस्तृत हो; सब प्रकार की ज्योतियां सुलभ हों, दीर्घकाल तक हम

सूर्य के दर्शन करते रहें।

१४. सोम-प्राप्ति के अधिकारी कौन हैं ?

इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परिषिच्यसे।

नरे च दक्षिणावते वीराय सदना सदे। ऋक् ९-९७-१०

हे सोम ! (ओषधि-वीर्य अथवा उत्तम भोग्य पदार्थ) तू कामक्रोधादि शत्रुओं को मारने वाले ऐश्वर्यशाली; दान-दक्षिणा देने वाले अनासक्त मनुष्य अथवा किसी भी सदन में बैठकर वीरता का व्यवहार करने वाले निर्भय मनुष्य के लिए निष्पन्न किया जाता है।

१५. पवस्व सोम धारया। इनु द्वेषांसि सध्र्यक्। ऋक् ८-२९-४

हे सोम ! अपनी वाणी द्वारा हमें सतत प्राप्त हो, हमें पवित्र कर तथा हमसे सब द्वेष भावनाओं तथा शत्रुओं को दूर कर।

पता—५२२ ईश्वर भवन, खारी बावली, दिल्ली-६

सोम का वैदिक स्वरूप

—राजेन्द्र आर्य

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः ।
तेषां पाहि श्रुधी हवम् ।। —ऋग्वेद १-२-१

भावार्थ—हे अनन्तबल युक्त सबके प्राणस्वरूप अन्तर्यामी परमेश्वर ! हम आपका हृदयरूपी आसन पर आह्वान करते हैं । तपश्चर्या से शुद्ध किये अन्तःकरण के साथ सोम स्वभाव वाले आत्मा को समर्पित करते हैं । और विविध विद्वानों के हार्दिक वचनों को आपकी स्तुति—प्रार्थना हेतु अर्पण कर भूरिशः रक्षा की कामना करते हैं ।

सोम का अर्थ ओषधि—वैदिक साहित्य में सोम का ओषधियों के साथ विशेष सम्बन्ध बताया गया है । सोम को ओषधियों का राजा तक कहा गया है । उदाहरण के लिए

१. **सौम्या औषधयः ।** शतपथ ब्रा. १२-१-१-२.
२. **सोम ओषधीनामधिराजः ।** गोपथ ब्रा. १-१७
३. **सोमो वै राजौषधीनाम् ।** कौ. ४.१२ तै. ३-९-१७-१
४. **ओषधो हि सोमो राजा ।** ऐ. ३।४०
५. **या ओषधीः सोमराज्ञीः ।** ऋ. १०।९७।१८-१९
६. **ओषधयः संवदन्ते सोमेन सह राज्ञा ।** ऋ. १०-९७-२२

ब्राह्मण ग्रन्थों और वेद के इन वाक्यों में स्पष्ट ही ओषधियों का सोम सम्बन्धी होना, सोम का ओषधियों का राजा होना और ओषधियों का सोम राजा से संवाद करना—मिल के रहना बताया गया है । यों भी **भारतीय** आयुर्वेद में सोम को एक बड़ी प्रभावशालिनी ओषधि माना गया है । ओषधि शब्द का सामान्य लौकिक संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध अर्थ शरीर के रोगों का नाश करने वाली दवायें होता है । और सोम को ओषधियों का राजा अर्थात् एक बहुत प्रभावशाली तथा शक्ति देने वालो ओषधि समझा जाता है । वेद और वैदिक साहित्य में ओषधि और सोम के अनेक स्थानों में ऐसे वर्णन आते हैं जहाँ इनका अर्थ प्रसिद्ध ओषधियाँ या दवायें ही करना होगा । परन्तु क्या सर्वत्र वेद में सोम का अर्थ एक विशेष प्रकार

की प्रभावशाली ओषधि अथवा बूटी ही होता है ? वेद में सर्वत्र सोम का अर्थ सोम नामक बूटी नहीं होता है। वेद के बहुत स्थलों में सोम का अर्थ परमात्मा होता है। और बहुत स्थलों में सोम का अर्थ गुरुकुलों से विद्याप्राप्त ब्राह्मणादि तीनों वर्णों के विद्वान् स्नातक होता है। फिर कई प्रसंगों में स्नातकवाची सोम शब्द को न्यायाधीश और संन्यासी आदि अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। ऋग्वेद १।९३।४ में पवन को ही सोम कहा है। ऋग्वेद ९।९६।५ के आधिदैविक अर्थ में निरुक्तकार महर्षि यास्क ने प्रकाश, अग्नि और पृथिवी का उत्पादक 'सोम' को बताया है। आचार्य दयानन्द ने सोम का व्यापक अर्थ लिया। **सवत्यैश्वर्यहेतुर्भवतीति सोमः** उणादि कोष (पाद १ सूत्र १४०) में सम्पूर्ण ऐश्वर्य का हेतु सोम को कहा है। सोम का कहाँ क्या अर्थ लेना है यह प्रकरण-प्रकरण में आये हुए सोम के विशेषणों और वर्णनों के आधार पर निर्णीत होगा। सोम का सब जगह बूटी अर्थ करना वेद के साथ घोर अन्याय है। यह ठीक है कि बूटी, रस, जल, ऐश्वर्य, चन्द्रमा आदि अर्थ भी सोम के वेद में होते हैं पर सर्वत्र यही अर्थ करना असंगत है। विशेषणों के आधार पर ही हमें कोई अर्थ करना होगा और इस पद्धति से अर्थ करने में हमें वेद के अपेक्षाकृत बहुत थोड़े स्थल ऐसे मिलेंगे जहाँ सोम का अर्थ बूटी, रस, चन्द्र आदि ही हो सकेगा। अधिकांश स्थलों में दूसरे अर्थ भी होंगे। वेद में देवों का भाग जल, औषधियों का रस, घृत और सोम है—

> **देवानां भाग उपनाह एष अपां रस ओषधीनां घृतस्य ।**
> **सोमस्य भक्षमवृणीत शक्रो बृहन्नद्रिरभवच्छरीरम् ।।**
>
> —अथर्व. ९।४।५

अर्थात् (एषः) यह (देवानां भागः) देवों का भाग (अपानाहः) नियत किया गया है, जो (अपां) जलों का, (ओषधीनां) ओषधियों का और (घृतस्य) घृत का (रसः) रस है। (शक्रः) इन्द्र ने (सोमस्य भक्षम्) सोम के भोजन को (अवृणीत) चुना है, (बृहन् अद्रिः) पत्थर की विशाल कूंडी (शरीरम् अभवत्) जिस सोम को पीसने वाली है।

अन्यत्र वैदिक स्तोता कामना प्रकट करता है कि सर्वोत्पादक बृहस्पति प्रभु मुझे पशुओं का दूध और ओषिधियों का रस भोजन के लिए प्रदान करता रहे—

> **पयः पशूनां रसमोषधीनां**
> **बृहस्पतिः सविता मे नियच्छात् ।**
>
> —अथर्व. १९-३१-५

ऋग्वेद में ११ बार स्पष्ट रूप से सोम को वृषभ कहा गया है।

वृषभ सोम का रेतस् (रस) पाकर वत्स की मातृभूत धीतियाँ शब्दायमान हो जाती हैं। (ऋग्वेद ९-१९-४) जैसे भयङ्कर वृषभ बल दिखाने की इच्छा से अपने शृंगों को तीक्ष्ण करता हुआ दहाड़ता है, वैसे ही सोम रूप वृषभ भी अपने डंठल रूपी हरे-हरे सींगों को सिलबट्टों पर तीक्ष्ण करता हुआ शब्द करता है (ऋ. ९-७०-७) जैसे वृषभ गोयूथ में जाता है, वैसे ही सोमरूप वृषभ 'आपः' के समीप जाता है (ऋ. ९-७६-५.) दस अंगुलियाँ ग्रावाओं द्वारा वृषभ सोम को जलों में दुहती हैं (ऋ. ९-८०-५)।

यह सोम सहस्र धाराओं से बहने वाला वृषभ है, जो ऋतजात है—

सहस्रधारं वृषभं पयोवृधं प्रियं देवाय जन्मने।
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत्॥

—ऋ. ९-१०८-८

सोम उक्षा भी है। ऋग्वेद में ५ बार सोम सूक्तों में उसके लिए उक्षा शब्द आया है। उक्षा सोम जब निचोड़े जाने पर शब्द करता है तब धेनुएँ (प्रीणयित्री स्तुतियां या आपः) उसके समीप जाती हैं (ऋ. ९।६९।४)।

इस पर्वत निवासी (गिरिष्ठा) उक्षा को बुद्धिमान् लोग ऊर्ध्व स्थानों पर दुहते हैं। (ऋ. ९.९५.४)

यह सोम सिन्धु की उत्ताल तरंगों में लहराने वाला उक्षा पशु है—

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृभ्णते॥

—ऋ. ९।८६।४३

ऋग्वेद १-१६४-४३ में कहीं दूरी पर गोबर के उपले का धुआं दिखाई देने की चर्चा है उसके विषय में कहा गया है कि वीरों ने उक्षा पृश्नि (=सोमवल्ली) को पकाया है उसी का यह धुआँ है।

शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्॥

सायण यहाँ वीर का अर्थ विविध विधियाँ करने कराने वाले ऋत्विज् या देव तथा उक्षा का अर्थ सोमवल्ली करते हैं। प्रमाण रूप में उन्होंने एक वचन भी उद्धृत किया है।

सोम उक्षाभवत् पूर्वं तं देवाः शकृतापचन्।
यज्ञार्थे तद्भवो धूमो मेघ आसीत् तदुच्यते॥

ऋ. ९।८६।४३ में **उक्षणं पशुम्** शब्द का अर्थ सायण ने बैल या सांड अर्थ न लेकर सोम अर्थ ही किया है।

सोम का अर्थ वीर्य—पं. हरिशरण सिद्धान्तालंकार ने ऋग्वेद मन्त्र १-४४-९ में सोम शब्द का अर्थ वीर्य किया है।

पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि।
उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः॥

—ऋग्वेद १-४४-९

(१) हे अग्ने = परमात्मन्! आप अध्वराणाम् = सब हिंसा रहित कर्मों के, यज्ञों के पतिः = रक्षक, असि = हैं। आपकी कृपा से ही सब यज्ञ पूरे हुआ करते हैं।

(२) हे अग्ने! आप ही विशाम् = सब प्रजाओं के दूतः = ज्ञान के सन्देश को प्राप्त कराने वाले हैं।

(३) आप ही उषर्बुधः = प्रातःकाल में जागने वाले स्वर्दृशः = ज्ञान के सूर्य को देखने वाले अर्थात् प्रातःकाल स्वाध्यायशीलदेवान् = देववृत्ति के लोगों की अद्य = आज सोमपीतये = सोम के रक्षण व शरीर में ही पीने व व्याप्त करने के लिए आवह = प्राप्त करवाइए। वस्तुतः शरीर में सोम = वीर्य के रक्षण के लिए आवश्यक है कि (क) हम प्रातःकाल जागें, (ख) स्वाध्याय-शील हों (ग) देववृत्ति को अपनाएँ।

भावार्थ—उषः जागरण, स्वाध्याय व देववृत्ति को अपनाने पर हम शरीर में सोम का रक्षण कर पाते हैं इस सोम का रक्षण होने पर हमारे जोवन में यज्ञात्मक कर्म चलते हैं और हम प्रभु के ज्ञान सन्देश को सुन पाते हैं।

पं. विश्वनाथ वेदालंकार ने अथर्ववेद १४।१।१-५ तक के मन्त्रों में सोम का अर्थ वीर्य किया है—

(१) **सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः।**
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधिश्रितः॥

—अथर्व. १४-१-१

अर्थात् सत्य द्वारा मातृशक्ति थामी हुई है, दृष्टिशक्ति तथा मस्तिष्क शक्ति द्वारा पितृशक्ति थामी हुई है। नियमों द्वारा आदित्य ब्रह्मचारी अपने व्रत में स्थित होते हैं, जिनके कि सिर में या मस्तिष्क में (सोमः) = वीर्य आश्रित होता है। यहाँ सोम का अर्थ वीर्य है। सोम का अर्थ वोर्य होने के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रमाण द्रष्टव्य हैं—

(क) सोम शब्द 'सु' धातु से बना है जिसका अर्थ प्रसव भी है। वीर्य प्रसव में साधन है। Seed, Semen शब्दों में भी सु धातु ही प्रतीत होता है। 'सोम' शब्द में 'मन्' प्रत्यय है और सु धातु है अतः सोम का मौलिक रूप सुमन् है जो कि Semen के साथ मिलता है। Semen का अर्थ अंग्रेजी में वीर्य है।

(ख) यजुर्वेद १९ तथा २० अध्यायों में सोम को शुक्र, रेतः और इन्द्रिय कहा है। शुक्र का अर्थ वीर्य भी होता है। और इन्द्रिय का अर्थ सामर्थ्य और शक्ति।

(ग) आयुर्वेद में अग्नि और सोम शब्द का प्रयोग रजः तथा वीर्य के लिए हुआ है।

यथाः—**"सौम्यं शुक्रमार्तवमाग्नेयम्"**।

अर्थात्—"शुक्र" सोम है तथा "ऋतुधर्म" अग्नि है।

तथा—**"शुक्रं च्युतं योनिमभिप्रतिपद्यते संसृज्यते चार्त्तवेन।**
ततोऽग्निःसोमसंयोगात् संसृज्यमानो गर्भाशयमनुप्रतिपद्यतेक्षेत्रज्ञः॥
(सुश्रुत, शरीर स्थान, अ. ३)

अर्थात्—शुक्र (=वीर्य) पुरुष से च्युत होकर योनि में आता है और ऋतु-धर्म (रजः) के साथ मिलता है। तब अग्नि और सोम के संयोग के साथ मिलकर जीवात्मा गर्भाशय को प्राप्त होता है।

(घ) ब्राह्मण ग्रन्थों में सोम शब्द का अर्थ वीर्य भी किया गया है।

यथाः— **"रेतः सोमः"**। कौ. ब्रा. १३।७, तै. ब्रा. २।७।४।१ शतपथ ब्रा. ३।३।२, ३।३।४।२८, ३।४।३।११, १।९।२।९, २।५।१।९, ३।८।५।२।

वीर्य शक्ति का प्रभाव—

(२) सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः॥
अथर्व—१४-१-२

अर्थात्—(सोमेन) वीर्य द्वारा (आदित्याः) आदित्यब्रह्मचारी (बलिनः) बलवान् होते हैं, (सोमेन) वीर्य द्वारा (पृथिवी) स्त्री शक्ति भी (मही) पूजनीया होती है। (अथो) और (एषांनक्षत्राणाम्) इन अक्षत-वीर्यों के (उपस्थे) उपस्थेन्द्रिय में (सोमः) वीर्य (आहितः) स्थित होता है। आदित्य ब्रह्मचारी वीर्य द्वारा बलवान् होते हैं।

वास्तविक सोमपान

(३) सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिषन्त्योषधिम्।
सोमं यं ब्रह्मणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिवः॥ अथर्व. १४।१।३

इस मन्त्र में सोमपान का वर्णन है। मन्त्र में बताया गया है कि सोम ओषधि को कूट कर और उसका रस निकालकर पीने से जो व्यक्ति यह समझ लेता है कि मैंने सोमपान कर लिया है। वह सोमपान के अभिप्राय को ठीक नहीं समझ रहा होता है, ब्रह्मवेत्ताओं अर्थात् वेद वेत्ताओं के मत में सोमपान और ही वस्तु है। स्त्री-भोगी पुरुष ब्रह्मवेत्ताओं में प्रसिद्ध सोमपान नहीं कर सकता। ब्रह्मवेत्ताओं का सोम-पान है वीर्य को शरीर के भीतर लीन करना उसके द्वारा मस्तिष्क शक्ति, शारीरिक शक्ति तथा आत्मिक शक्ति को बढ़ाना।

वीर्य की वृद्धि, रक्षा तथा निर्माण

(४) यत् त्वा सोम प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः।।

अथर्व. १४।१।४

मन्त्र में वीर्य के पान अर्थात् वीर्य को रक्त में अन्तर्लय करने पर वीर्य और अधिक बढ़ता है यह बताया गया है। प्राणायाम और शुद्ध वायु वीर्य को उत्पन्न करती है और उत्पन्न हुए वीर्य की रक्षा करती है। शुद्ध वायु या शुद्धवायु में किया गया प्राणायाम जो वीर्य को बनाता है। इसमें दृष्टान्त मास और वर्ष का दिया है। मास और वर्ष का परस्पर सम्बन्ध क्या है? हम कह सकते हैं कि इनका परस्पर तादात्म्य सम्बन्ध है। मास ही मिलकर वर्ष बन जाता है। इस दृष्टान्त को देते हुए वेद ने यह दर्शाया है कि शुद्ध वायु या शुद्ध वायु में किये गये प्राणायाम और वीर्य में भी तादात्म्य का सम्बन्ध है। मानो वायु ही वीर्य रूप में परिणत हो जाती है या प्राणायाम वीर्यशक्ति का निर्माण करने वाला है। इस तादात्म्य सम्बन्ध को दर्शाकर वेद ने वीर्य के निर्माण तथा वीर्य की रक्षा के सम्बन्ध में प्राणायाम के महत्त्व को दर्शाया है। वायु और सोम (=वीर्य) के सम्बन्ध को यजुर्वेद १९।३ में और भी स्पष्ट कर दिया है—

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अतिद्रुतः। इन्द्रस्य युज्यः सखा।
वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ् सोमो अतिद्रुतः। इन्द्रस्य युज्यः सखा।।

यजुर्वेद १९।३

अर्थात् वायु की पवित्र करने वाली शक्ति द्वारा पवित्र हुआ सोम अर्थात् वीर्य "पिछली उम्र" में बहुत शक्ति का संचार करने वाला है, और इन्द्र अर्थात् शक्ति का योग्य सखा यह सोम है। इसी प्रकार यह सोम "पहली उम्र" में भी बहुत शक्ति का संचार करने वाला है।

इस मन्त्र में "प्रत्यङ्" और "प्राङ्" शब्द जीवन के पिछले समय अर्थात् वृद्धत्व के, तथा जीवन के पहले समय अर्थात् युवावस्था के सूचक हैं। वायु से पवित्र

हुआ सोम इन दोनों समयों में शरीर की शक्ति को बनाये रखता है। इस प्रकार शुद्ध वायु के सेवन तथा शुद्धवायु में किये गये प्राणायाम का सोमशक्ति के निर्माण, वर्धन तथा रक्षण के साथ बहुत सम्बन्ध है।

वीर्य-शक्ति की रक्षा की विधियां

(५) **आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः।**
ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः॥
(ग्राव्णाम्+इत्+शृण्वन्) अथर्व. १४।१।५

अर्थात् वेदोक्त आच्छादन विधियों अर्थात् बचाव के वैदिक साधनों और उपायों द्वारा वीर्य शरीर में लीन हो सकता है, और इस प्रकार रक्षित हो सकता है। शृङ्गारोत्पादक गीतों, कथाओं तथा वार्तालापों से शरीर में वीर्य स्थित नहीं रहता। वैदिक धार्मिक वाणियों को सुनते रहने से ही वीर्य शरीर में स्थित होता है।

स्त्री—भोगी-पुरुष, अर्थात् पार्थिव—भोगों में लिप्त पुरुष, वीर्याशन—जिसे कि ऊपर सोम-पान कहा है—नहीं कर सकता।

सोम का अर्थ स्नातक—सोम का अर्थ सर्वत्र सोम नामक बूटी अथवा चन्द्रमा या कोई और जड़ पदार्थ नहीं किया जा सकता यह दिखाने के लिए हम नीचे वेद के कुछ मन्त्र उपस्थित करते हैं—

१. **सोमा असृग्रम विश्वानि काव्या।** ऋ. ९।२३।१

ये सोम सभी प्रकार के काव्यों अर्थात् गहरे ज्ञानों की रचना करते हैं।

२. **सोमास आयवः पवन्ते मदम्।** ऋ. ९।२३।४

ये सोम आयु अर्थात् मनुष्य हैं और हर्षकारक पदार्थों को पवित्र करते हैं।

३. **सोमः सुवीरः।** ऋ. ९।२३।५

सोम बड़ा उत्तम वीर है।

४. **सोम नृभिर्वि नीयसे।** ऋ. ९।२४।३

वह मनुष्यों द्वारा सुशिक्षित किया जाता है।

५. **एते सोमास इन्द्रं वर्धन्ति कर्मभिः।** ऋ. ९।४६।३

ये सोम अपने कर्मों से इन्द्र अर्थात् सम्राट् की महिमा को बढ़ाते हैं।

६. **अयं सोमः कपर्दिने घृतं न पवते मधु।**
आ भक्षत् कन्यासु नः॥ ऋ. ९।६७।११

यह सोम विवाह के समय मुकुटधारी, अपने लिए हमारी कन्याओं में से किसी व्रता द्वारा दिये हुए मधु को खाता है।

७. **सोमो वधूयुरभवत् ।** ऋ. १०।८५।९

वह वधू की कामना करने वाला होता है ।

८- **विहनन्तो दुरिता ।** ऋ. ९।६२।२

ये सोम दुराचरणों को मारने वाले हैं ।

९. **एष वनेषु विनीयते ।** ऋ. ९।२७।३

इसको वनों में शिक्षा दी जाती है ।

१०. **ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन् सत्यकर्मन् ।** ऋ. ९।११३।४

वह सोम ज्ञान की बातें बोलता है, ज्ञान को ही धन समझता है, सत्य का उपदेश करता है और सत्यपूर्ण कर्म करता है ।

उपर्युक्ति उदाहरणों से स्पष्ट है कि सोम ऐसा विद्वान् है जो युवक है, अभी-अभी शिक्षा संस्थाओं से गुरुकुलों से विद्या पढ़कर आया है और गृहस्थ आश्रम की तैयारी कर रहा है अर्थात् गुरुकुलों का स्नातक है । तीनों वर्णों के ही स्नातक को सोम कहा गया है । क्योंकि सोम के वर्णन ऐसे हैं जो कोई ब्राह्मण पर घटते हैं कोई क्षत्रिय पर और कोई वैश्य पर । इस प्रकार सोम के पुरुषवाची अर्थों में सामान्यतः उसका अर्थ स्नातक है । और कई स्थलों में उसका अर्थ न्यायाधीश और संन्यासी और सामान्य गृहस्थ आदि भी हो जाता है । क्योंकि ये सभी सोम अर्थात् स्नातक हो चुके होते हैं । सोम का अर्थ गुरुकुल का स्नातक होता है इस विषय में विस्तार से पं. बुद्धदेव जी विद्यालंकार की पुस्तक "सोम" में वर्णन किया गया है ।

सोम का अर्थ न्यायाधीश—ऋग्वेद ७।१०४ और अथर्ववेद ८।४ सूक्तों में इन्द्र और सोम से राक्षसों अर्थात् प्रजापीड़क दुष्कर्मा लोगों को दण्डित करके प्रजा-जनों की रक्षा की प्रार्थना है । इन्द्र और सोम का सबसे अधिक इकट्ठा वर्णन इन्हीं दो सूक्तों में हुआ है । और ये सूक्त पच्चीस-पच्चीस मन्त्रों के लम्बे सूक्त हैं । इन सूक्तों को ध्यान से पढ़ने से पता लगता है कि अपराधियों के पारस्परिक आरोपों की सत्यासत्यता का निर्णय करने का काम सोम को सौंपा गया है । इन्द्र का काम केवल दण्ड देना है । उदाहरण के लिए कुछ मन्त्र द्रष्टव्य हैं—

१. **सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।**
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥
अथर्व. ८।४।१२, ऋ. ७।१०४।१२

अर्थात्—उत्कृष्ट विज्ञान को जानने वाले सोम नामक जन के पास सत्य और असत्य वचन अपनी-अपनी विजय के लिए स्पर्धा करते हुए आते हैं, उनमें से जो सत्य है, जो सीधा-सरल है, उसकी सोम रक्षा कर लेता है और जो असत्य है उसको मार देता है—दण्डित कर देता है ।

२. ये पाकशंसं विहरन्त एवैर्य वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः ।
अहये वा तान्प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ।।

अथर्व. ८।४।९, ऋ. ७।१०४।९

अर्थात्—जो शुद्ध, पुण्य की, बातें हो निरन्तर सोचने वाले मुझ पर अपने आक्रमणों से बार-बार आते हैं, अथवा जो अपने कमाये अन्नादि के साथ रहने वाले मुझ भद्र आचरण वाले को दूषित करते हैं उन दुष्ट पुरुषों को सोम या तो मारने वाले अर्थात् फाँसी देने वाले पुरुषों को सौंप दे अथवा कारागार की गोद में डाल दे ।

३. न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् ।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद्वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ।।

अथर्व. ८।४।१३, ऋ. ७।१०४।१३

अर्थात् सोम पापकारी को बढ़ने नहीं देता, और न ही मिथ्या वचन को अथवा प्रजाहिंसन को धारण करने वाले क्षत्रिय को बढ़ने देता है, ऐसे राक्षस व्यक्ति को, और असत्यवादी को, सोम दण्डित करता है, पापी और असत्यवादी दोनों सम्राट (इन्द्र) के बन्धन में पड़ जाते हैं ।

इन मन्त्रों में स्पष्ट कहा गया है कि झगड़ने वाले लोगों की स्थापनाओं के वचनों की सत्यासत्यता का निर्णय सोम करता है । सोम ही यह निर्णय करता है कि अपराध के अनुसार किसको फाँसी पर चढ़ाना चाहिए और किसको कारागार में डालना चाहिए—अर्थात् सोम ही यह निश्चय करता है कि किस अपराधी को क्या दण्ड मिलना चाहिए । सोम से अपराध और दण्ड का निर्णय हो जाने के पश्चात् अपराधी सम्राट (इन्द्र) के बन्धन में पड़ जाते हैं । इन मन्त्रों में वर्णन से स्पष्ट पता चलता है कि न्याय का (Judicial) काम सोम का है और शासन का (Executive) काम इन्द्र का है । सोम जो दण्ड निर्धारित कर देता है इन्द्र उस दण्ड को दिलवा देता है ।

न्याय का काम विशेष रूप में सोम का है इस सम्बन्ध में अथर्ववेद के मन्त्र १९।२४।३ में भी बताया गया है—

परीमं सोममायुषे महे श्रोत्राय धत्तन ।
यथैनं जरसे नयां ज्योक्श्रोत्रेऽधि जागरत् ।।

अथर्व. १८-२४-३

अर्थात् इस सोमगुण युक्त सम्राट को (सोमं) प्रजाओं की आयुवृद्धि के लिए—जीवन रक्षा के लिए, महान् श्रवण के (श्रोत्राय) सिंहासन पर बिठाओ, ऐसा उपाय करो जिससे इसको बुढ़ापे तक ले जा सके, देर तक यह श्रमण के काम में (श्रोत्रे) जागता रहे ।

मन्त्र में सम्राट के लिए सोम नाम आया है। सोम का काम "श्रोत्र" कहा है। सोम का यह श्रवणकर्म न्याय का काम करने की सूचना देता है।

न्यायाधीश ब्राह्मण होना चाहिए—वेद में ब्राह्मणों का और सोम का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध बताया गया है। उदाहरण के लिए कुछ मन्त्र प्रस्तुत हैं—

१. सोमश्च यो ब्राह्मणो आविवेश। ऋ. १०-१६-६
—अ. १८-३-५५

जो सोम ब्राह्मणों में प्रविष्ट है।

२. ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः। —ऋ. ६-७५-१०, —यजु. २९-४७

ब्राह्मण पितर हैं और सोम से सम्बन्ध रखने वाले हैं।

३. ब्राह्मणासः सोमिनः। ऋ. ७-१०३-८

ब्राह्मण सोम वाले हैं।

४. सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा। —यजु. ९-४०

सोम हम ब्राह्मणों का राजा है।

५. ब्राह्मणः---- स सोमं प्रथमः पपौ। अथर्व. ४-६-१

ब्राह्मण सोम का सबसे पहले सेवन करता है। ये कुछ थोड़े से मन्त्र ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद के प्रस्तुत किये। और भी अनेक मन्त्र हैं जिनमें ब्राह्मणों और सोम का इसी प्रकार घनिष्ठ सम्बन्ध बताया गया है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी सोम को कई जगह ब्राह्मण कहा गया है। जैसे—

१. तस्माद् ब्राह्मणो नाद्यः सोमराजा हि भवति। —शतपथ ५-४-२-३

२. सोमो वै ब्राह्मणः। —तां. २३-१६-५

३. सौम्यो हि ब्राह्मणः। —तै. २-७-३-१

यहाँ ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार सोम ब्राह्मण है और वेद के अनुसार सोम न्यायाधीश है तो न्यायाधीश को ब्राह्मण होना चाहिए।

ऋग्वेद ७।१०४।१३, अथर्व. ८।४।१३ में बताया गया है कि न्यायाधीश अपराधी क्षत्रियों (राज्याधिकारियों) को भी दण्डित करे।

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया, धारयन्तम्।
—ऋ. ७।१०४।१३ अ. ८।४।१३

अर्थात् सोम पापकारी को बढ़ने नहीं देता है और न ही मिथ्यावादी और प्रजाहिंसक क्षत्रिय को बढ़ने देता है।

अब इस मन्त्र में इस प्रकार बलपूर्वक सोम के विषय में यह कहना कि वह अपराधी क्षत्रिय को भी नहीं छोड़ता है यह सूचित करता है कि सोम ब्राह्मण है।

वेद एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में ब्राह्मण का अर्थ जन्मगत ब्राह्मणत्व वाला व्यक्ति नहीं है। वेद में ब्राह्मण संयमी, तपस्वी और कम से कम भौतिक आवश्यकताओं (Materi of wants) वाले व्यक्तियों को कहते हैं। जिनके जीवन का लक्ष्य ज्ञान और सत्य की निःस्वार्थ खोज और उनका निःस्वार्थ प्रचार करना होता है।

महर्षि पाणिनि ने अष्टाध्यायी के अन्तर्गत ब्राह्मण शब्द का अर्थ—**ब्रह्म अधीते वेद वा ब्राह्मणः। तदधीते तद्वेद।** किया है। अर्थात् जो ब्रह्म अर्थात् परमात्मा को जानता है और जो ब्रह्म—विद्या का अध्ययन करता हो वह ब्राह्मण कहलायेगा। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में मनुस्मृति १।८८ के आधार पर ब्राह्मण के गुण लिखे हैं—"ब्राह्मण के पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना, दान देना, लेना ये छः कर्म लिखे हैं।

सोम का अर्थ परमात्म—ब्राह्मण ग्रन्थों में कई स्थलों पर सोम का अर्थ प्रजापति अर्थात् परमात्मा किया गया है। उदाहरण के लिए शतपथ ब्राह्मण में कहा है—

१. सोमो हि प्रजापतिः। —शत. ५।१।५।२६
२. सोमो वै प्रजापतिः। —शत. ५।१।३।७१

ऋषि दयानन्द ने वेद में सोम सूक्तों के अन्तर्गत सोम शब्द का अर्थ बहुदेवतावाद के रूप में न ग्रहण करके महर्षि यास्क की परम्परानुसार सोम शब्द का अर्थ परमात्मा परक किया है। मेरी समझ से वेदों में सोम परमात्मापरक अर्थ में सबसे अधिक प्रयुक्त हुआ है। उदाहरण के रूप में कुछ मन्त्र प्रस्तुत हैं—

१. सोमः पवते जनिता मतीनां जनितादिवो जनिता पृथिव्याः।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः॥

—ऋ. ९।९६।५

भाषार्थः—सोम पवित्र करता है, वह मननशील बुद्धियों का उत्पन्न करने वाला है, द्युलोक का उत्पन्न करने वाला है, पृथिवी लोक का उत्पन्न करने वाला है, अग्नि का उत्पन्न करने वाला है, सूर्य का उत्पन्न करने वाला है, इन्द्र का उत्पन्न करने वाला है और विष्णु का उत्पन्न करने वाला है।

२. पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।
अतप्तत तनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत् समाशत॥

—ऋ. ९।८३।१

भावार्थः—ते = सोम ब्रह्म अर्थात् वेद का स्वामी है। उसका स्वरूप सबको पवित्र करने वाला है। उसका वह पवित्र स्वरूप सर्वत्र फैला हुआ है। वह सब कुछ करने में समर्थ सबका स्वामी है। वह संसार के सब पदार्थों के शरीरों में व्यापक है। जिन्होंने ब्रह्मचर्यादि व्रतों के तप द्वारा अपने शरीरों को तपाया नहीं है ऐसे कच्चे लोग उसके स्वरूप को नहीं पा सकते। जिन्होंने इन तपों के द्वारा अपने आपको तपा लिया है ऐसे परिपक्व लोग ही अपनी जीवन यात्रा में उसके पवित्र रूप को प्राप्त कर सकते हैं।

३. प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रार्तामित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम॥

—ऋ. ७।४१।१

मन्त्र के प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम भाग में सोम के बारे में बताया गया है—इस आनन्ददायक उषाकाल में (सोमम्) शीलता और शान्ति के भण्डार सौम्य स्वरूप भगवान को और दुष्टों को रूलाने वाले, उग्रस्वभाव रूद्र रूप प्रभु को अपनी रक्षार्थ पुकारते हैं।

सन्ध्या में मनसा—परिक्रमा के मन्त्रों में पहली अवस्था में जीव का स्वरूप अग्नि होता है। फिर वह उन्नति करते हुए इन्द्र, वरुण, सोम और विष्णु बनता हुआ अन्त में बृहस्पति बन जाता है, परन्तु सर्वोन्नत अवस्था पर पहुँचकर एक भय रहता है। उन्नत होने पर हमें अभिमान न आये, अत: उपासक कहता है—"मैं सौम्य स्वरूप परमात्मा को पुकारता हुआ स्वयं भी सौम्यता = नम्रता की भावना को जीवन में धारण करता हूँ। मैं सौम्य बनता हूँ।" महान् बनकर भी हम सौम्य नम्र बनें।

ऋग्वेद १।९१।१३ में सोम की उपासना करते हुए कहा गया है—

४. सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा।
मर्यइव स्व ओक्ये॥

—ऋ. १।९१।१३

हे सोम! अर्थात् हे सुख—शान्ति के स्रोत प्रभो! आपकी वन्दना करते हुए हमें युग बीत गये हैं, न आपका अन्त मिला और न आपकी महिमा का अन्त मिला। आपकी सन्तान होते हुए भी हम आपसे दूर हैं। यह दूरी कम करो। यही याचना है कि आप स्वयं हमारे हृदय मन्दिर के देवता बनकर हमारे अन्तःकरण में निवास करो। हमारा हृदय आपका घर हो। आप इसमें कुछ देर के लिए मेहमान बनकर नहीं बल्कि घर के मालिक बनकर रहें। सोम! हमें पता लग गया है कि हममें जो कुछ प्रकाशमय, ज्ञानमय, या आनन्दमय है वह सब आपका ही है और जो विवेक-शून्यता है, अल्प है वह हमारी अपूर्णता है।

आज्ञाकारी शान्तिदायक सोम ! हम आपके या आपकी वैभवमयी वाटिका के माली हैं। हमारा कर्त्तव्य है इसे यथाशक्ति स्वच्छ रखना, यही हमारा दायित्व है। आपसे ही इस मिट्टी के घर में प्रकाश है—ज्ञान है और विवेक है।

सोम का पान कौन कर सकता है ऋग्वेद १।१६।३ बताया गया है।

५. इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रं सोमस्य पीतये ।। —ऋ. १।१६।३

जो इन्द्र का स्मरण और इन्द्र के गुणों का धारण करते हैं वह सोम आध्यात्मिक आनन्द का पान करता है। ऋग्वेद ९।६५।१९, सामवेद ८३४ में परमात्मा, सोमदेव है बताया गया है—

६. आ नः सोम ! सहो जुवो, रूपं न सचसे भर ।
सु—ष्वाणी देव—वीतये ।। —ऋ. ९।६५।१९, साम ८३४।

प्रस्तुत मन्त्र प्रार्थना शैली का है। यह ज्ञान और उपासना से सम्बन्धित है। प्रार्थना वही सार्थक होती है जिसका कोई विशिष्ट उद्देश्य होता है। अपनी उन न्यूनताओं की पूर्ति के निर्मित उस सामर्थ्यवान् से याचना की जाती है जो उन्हें प्रदान करने की क्षमता रखता है। मानव जीवन का उद्देश्य है अपने को द्युतिमान करना, ज्ञानपूर्वक करके स्वयं को देवत्व से विभूषित करना और दिव्यताओं का प्रसार करना। 'देव-वीतये' दिव्यताओं की व्याप्ति के लिए तीन वस्तुएं चाहिए।

१. वर्चस्व २. सहनशीलता, धैर्य ३. उमंग, उत्साह। मन्त्र में सह प्रतीक प्रतीक है सहनशक्ति का 'जुवः' प्रतीक है उमंग, उत्साह, वेग का और वर्चः सर्वस्य की प्राप्ति को दर्शाता है।

परमात्मा 'सोम' देव है। मन्त्र में सोम उस सौम्य सरस मनोहर देव का सम्बोधन है। वह 'सु+स्वानः' सुप्रेरक है। वह अपनी सुप्रेरणाओं के माध्यम से उन साधकों के जीवनों को उपर्युक्त गुणों से भरपूर कर देता है जो जीवनों को सौन्दर्य की भाँति सुन्दर बना देते हैं। साधक उपासना के माध्यम से उस परम मनोहर दिव्य देव के समीपस्थ होकर अपने जीवनों को भव्य बनाने के लिए और जगत् में दिव्यताओं की व्याप्ति के लिए असीम धैर्य और उत्साह के दायक वेग और शोभनीय गुणों से दीप्त वर्चस्व संजोने के लिए सर्वगुण सम्पन्न प्रभु से इनकी प्राप्ति के लिए प्रार्थना करते हैं।

७. स नः पुनान आ भर, रयिं वीरवतीम् इषम् ।
ईशानः सोम । विश्वतः ।। —ऋ. ९।६१।६, सा. ७८९

यह मन्त्र ज्ञान-परक और उपासना परक है। इसमें परमात्मा को सोम से सम्बोधित किया गया है । प्रभु आनन्दमय है, स्नेहशील है । पर वह सर्वतः सबका स्वामित्व करता है । वह स्वयं नियम बद्ध है । साथ ही उसके नियम जगत् में अटूट हैं । वह सर्वशक्तिमान होता हुआ भी प्रेममय है । जो आत्मना उसकी लगन लगाता है, वह उससे स्नेह करता है, वह उसे सौम्य बना देता है, अपने गुणों से भरपूर कर देता है ।

साधक बनकर ज्ञानात्मा कह रहे हैं कि वह आनन्दमय स्वामी (नः) हमें (पुनानः) पवित्र करता हुआ (आ भर) [हमारे अन्तःकरण को] भर रहा है, पूर रहा है (रयिम्) आध्यात्मिक ऐश्वर्यों से, आत्म—सम्पदाओं से और (वीर+वतीम् इषम्) वीर-वती इच्छाओं से ।

आत्मा जब दिव्य ज्ञान के प्रकाश से अपने ज्योतिर्मय स्वरूप को देखता है, अजरत्व और अमरत्व का उसे जब बोध होता है तो सकल इच्छाओं की शक्ति को वीरवती बनाकर, दोषों, दुर्गुणों और दुर्व्यसनों से सर्वथा मुक्त होकर, जीवन को शोधकर उस आनन्दमय का प्रिय बनकर वह आनन्दमय हो जाता है, कर्मानुसार कष्टों को भी हंसकर सहन करता है क्योंकि नियमों में बद्ध न्यायकारी अपने न्याय—नियम को नहीं त्यागता पर आत्मा को सशक्त बनाकर उन्हें सहन करने की क्षमता प्रदान करता है ।

सोम का पान—परमसत्ता विराट आनन्द सिन्धु है । जब तक आत्म इन्दु निज बिन्दु को उस सिन्धु में समाहित नहीं कर देता, उसे आनन्द की प्राप्ति नहीं होती । आनन्द ही वह दिव्य रस है जिसका पान कर आत्मतृषा बुझती है । युग-युगों से, कर्मानुसार, अनेक शरीरों के बन्धनों से निकलकर जब आत्मा को मानव देह की प्राप्ति होती है जब उसे आनन्द विहीनता को अनुभूति होती है । सुख के समस्त साधन होते हुए भी व्याकुलता बनी रहती । जिस अतृप्ति के कारण मन अशान्त और चित्त अस्थिर है आत्मा उसे दूर करने के लिए साधनरत होता है ।

मानव बुद्धिजीवी है । बाह्यविराट् जगत में जो एक परम चेतना विद्यमान है जो सतत एकरूपा आनन्दमय है उसके समीपस्थ होकर व्याकुल आत्मा पुकारता है—

८. अध्वर्यो ! द्रावया त्वं सोमम् इन्द्रः पिपासति ।

—ऋ. ८।४।११, साम. ३०८ ।

"हे अविनाशी आनन्द सोमी ! तू अपना सोम उड़ेल, आत्मा पान करना चाहता है ।" तब वह परमपिता अपनी संतति की आकाँक्षा को तृषा को तृप्त करता

है। वह स्नेहमयी जगदम्बा अपनी संतति की पुकार को सुनती है जिसमें यह हृदयोद्‌गार व्यक्त किये जाते हैं—

यो वः शिव—तमो रसस् तस्य भाजयतेह नः।
उशत—इव मातरः।

—ऋ. १०.९.२ यजु. ११।५१ सा. १८।३८ अथर्व. १.५.२।

"जो तुम्हारा कल्याणप्रद रस है उसका हमें इस संसार में स्नेहमयी माताओं के समान सेवन कराओ।"

तब वह जगज्जननी कह उठती है—

९. अध्वर्यो ! अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आसृज।
पुनीहीन्द्राय पातवे॥

—ऋ. ९-५१-१. यजु. २०-३१, सा. ४९९, १०२५.

हे यजनशील साधक ! इस अध्यात्म रस को सिद्ध निष्पन्न करते हैं, चिन्तन के द्वारा इसे पवित्र अन्तःकरण में उड़ेला जाता है। यदि तेरा आत्मा पान करना चाहता है तो अपने अन्तःकरण को तू पवित्र कर।

साधक सकल साधनाएं केवल आत्म शुचिताओं के लिए करता है। शुचिता में ही वह शक्ति है जो षड्‌रिपुओं को परास्त करती है। शुचिता के लिए त्रि दोषों का निवारण करना होता है, दुरित, दुर्गुण और दुर्व्यसनों को त्यागना पड़ता है। आत्मा शक्ति के परमस्रोत, उस परमधाम को अपना आश्रय बनाता है। वह प्रार्थना के माध्यम से आत्मचीत्कार करता है, उस परमपावक को पुकारता है। बाहर के पटों को बन्द करके अन्तर्मुखी होता है। धारणा को द्रुति गति से अपरिपक्व करता है, ध्यानावस्थित होकर तल्लीन हो जाता है उस परमपावन विराट् में जिसके आनन्द की असंख्य धाराएं सर्वतः प्रवाहित हो रही हैं। साधक उन पावन धाराओं से अपनी समग्र मलिनताओं को धो डालता है, उनसे अपने को तरंगित करता है, रोमांचित हो उठता है। उस दिव्य सोम का पान कर मस्त हो जाता है, आनन्द के लिए विभोर होता है, अद्‌भुत शक्ति प्राप्त करता है और कह उठता है—

१०. स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।
इन्द्राय पातवे सुतः॥ —ऋ. ९।१।१, साम. ४६८, ६८९

"यही वह स्वादिष्ठ, आनन्दप्रद सोमधारा है जिसे पीकर आत्मा तृप्त होता है, मस्त होता है। प्रभु ने आत्मा की तृषा को शान्त करने के लिए इस सोम-धारा को उसके पवित्र अन्तःकरण में प्रवाहित किया है।"

जिन्होंने इस पवित्र रस का पान किया वे सुकर्मा बनकर अमर हो गए क्योंकि वह दिव्य पीयूष ही एकम् एव साधन है जो साधक को परमधाम में अवस्थित करता है, रसान्वित करता है, शक्ति का वर्धन करता है, और अमरत्व प्रदान करता है।

अतः साधको! दौड़ो इस सोम के पान से अपनी अनबुझ प्यास को बुझाओ। जन्म जन्मान्तर से व्याकुल आत्मा को मस्त बनाओ। परम आह्लाद् को प्राप्त करो।

मानव जीवन की सार्थकता इसी में है।

११. अपाम सोमम् अमृता अभूमा गन्म ज्योतिर् अविदाम देवान्।
किम् नूनम् अस्मान् कृणवद् अरातिः, किम् उ धूर्तिर् अमृत! मर्त्यस्य॥

—ऋग्वेद ८.४८.३

मन्त्र में साधना के दो अमूल्य रहस्यों का सरल उद्घाटन है, १. हमने सोमपान कर लिया है, हम अमृत हो गए हैं। २. हमने ज्योति प्राप्त कर ली है, हमने दिव्यताएं प्राप्त करली हैं। सोम का पान करने से अमृत की प्राप्ति होती है और ज्योति की प्राप्ति से दिव्यताओं की उपलब्धि होती है।

सोम के पान से तात्पर्य यहां ब्रह्मानन्द के सरस रस के पान से है और अमृत से तात्पर्य है निर्विघ्न, आनन्दमय पद। ब्रह्म सोम के पान से निर्विष, निर्विकार, अनामय पद की प्राप्ति है। इसी पद का नाम शरीर में रहते हुए जीवन्मुक्त अवस्था है, और शरीर त्याग के पश्चात् शाश्वत मोक्ष है। ज्योति की प्राप्ति से दिव्यताओं की प्राप्ति होती है। ज्योति से तात्पर्य उस आत्म आभा और ब्रह्मप्रकाश से है। जो आत्मसाक्षात्कार तथा ब्रह्म के संदर्शन से द्योतित होता है। आत्म आभा और ब्रह्म-प्रकाश से सफल दिव्यताओं का द्योतन होता है।

जब वैदिक योग के साधक योगी सोमपान से अमृत हो जाते हैं और ज्योति के आश्रय से दिव्यताएं प्राप्त कर लेते हैं तो वे संसार और सांसारिकता से इतने ऊँचे और निर्लेप हो जाते हैं कि शत्रुता करने वाले की शत्रुता और धूर्तता करने वाले की धूर्तताओं से नहीं आतंकित होते हैं न विचलित। किसी के दुर्व्यवहार का बदला वे कल्याण प्रद सद्व्यवहार से चुकाते हैं किसकी सामर्थ्य है कि ऐसे निर्लेप नारायण का बाल भी बांका कर सके।

सामवेद मन्त्र ५२० में कहा है जो परमात्मा के सोम रस का पान कर लेता है वह अमरत्व को प्राप्त हो जाता है।

१९. इन्द्राय पवते मदः, सोमो मरुत्वते सुतः ।
सहस्त्रधारो अत्य् अव्यम् अर्षति, तम ईमृजन्त्य् आयवः ।।

—सामवेद ५२० ।

उपासक ध्यान और चिन्तन से सोम का निष्पादन करता है उसकी सहस्त्र धाराएं इन्द्रियों के स्वामी आत्मा (इन्द्र) के आनन्द के निमित्त प्रवाहित होकर रोम रोम को रोमांचित करती हैं । इस रस का पीने वाला आनन्द मग्न होकर ऐसे सुकृत्य करता है जो उसे अमरत्व प्रदान करते हैं ।

उपर्युक्त कुछ थोड़े से मन्त्र सोम का परमात्मा परक अर्थ से सम्बन्धित प्रस्तुत किये । अन्य अनेक सूक्तों में भी सोम का परमात्मा परक अर्थ है । सोम का वैदिक साहित्य में विस्तार से वर्णन किया गया है । यहाँ पर हमने सोम के थोड़े से अर्थों से सम्बन्धित मन्त्रों का संकलन प्रस्तुत किया है । अन्य और भी मन्त्र हैं जिनके अन्तर्गत सोम का अर्थ जल, चन्द्रमा, ऐश्वर्य, संन्यासी आदि बताया गया है ।

गृह सं.-५-ब-८२, विद्युत् विहार, पत्रालय—शक्तिनगर
जनपद—सोनभद्र (उ.प्र.) पिन—२३१२२२

सोम का वैदिक स्वरूप

—पीताम्बर लाल शर्मा

वर्तमान समय में इस सोम को लेकर अनेक प्रकार की भ्रान्तियां हमारे विद्वद् समाज में घर कर गई हैं। जिनका मूल कारण है कि वेदों का स्वाध्याय तथा मनन न करने से ऐसा विचार बन गया है। वेद विद्या का अभ्यास छूटने से वे लोग अनापशनाप विचारधारा देने लगे, जो एक प्रकार का समाज के प्रति उनका अपना अज्ञान तथा अविद्या का ही द्योतक कहा जा सकता है। अस्तु !

वेदों में सोम शब्द हजारों बार आया है और ऋग्वेद के सम्पूर्ण नवम मण्डल और सामवेद के अधिकतर मंत्रों का देवता अथवा प्रतिपाद्य विषय सोम है। साधारणतया प्रायः भाष्यकार इससे एक सोम नामक लता विशेष के रस का ग्रहण करते हैं जो मद कारक माना जाता है। पाश्चात्य अनुवादक इसका अनुवाद प्रायः वायन या शराब कर देते हैं। आजकल के अनेक शिक्षित और पश्चात्यानुयायी भारतीय भी सोम को एक शराब ही समझते हैं, जिसका सेवन करने से प्राचीन लोग मस्त रहते थे। इसी भ्रम में सुप्रसिद्ध लेखक श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने "लोपामुद्रा" नामक ग्रन्थ में ऋषियों का एक सर्वथा शापित, अशुद्ध चरित्र चित्रण किया है।

वस्तुतः सोम के आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक दृष्टियों से अनेक अर्थ को न जानने से ही यह भ्रान्ति उत्पन्न हुई है। जो एक विशेष औषधि रस को ही सोम मान लेने वाले वास्तविक वैदिक मान्यता से परे ही हैं। ऐसे एक ओषधि रस को ही सोम मान लेने वाले वास्तविक तत्त्वानभिज्ञ लोगों के विषय में ऋग्वेद १०।८१।३ में स्पष्टतया बतलाया गया है कि=

सोमं मन्यते पपिवान्, यत् संपिषन्त्योषधिम्।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन ।।

अर्थात् जिस औषधि को पीसा जाता है उसके रस का पान करने वाला समझ लेता है कि मैंने सोम का पान कर लिया है, किन्तु वस्तुतः ब्रह्मा चतुर्वेदवेत्ता ज्ञानी लोग जिस सोम को जानते हैं, उसका कोई सेवन नहीं करता।

अथर्ववेद में भी यह मंत्र थोड़े से भेद से १४।१।३ में पाया जाता है—

सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिषन्त्योषधिम् ।
सोमं यं ब्राह्मणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिवः ।।

यहाँ ऋग्वेद के "कश्चन" के स्थान में पार्थिव शब्द का प्रयोग है जो कश्चन के तात्पर्य को स्पष्ट करता है। अर्थात् जो पार्थिव है पृथिवी के भोगों में तत्पर है, ऐसा कोई सोम के वास्तविक स्वरूप को नहीं जानता। वह सोम ओषधि के रस को ही पीकर अपने को सोम रस का पान करने वाला मान लेता है। जबकि आध्यात्मिक सोम कोई और ही वस्तु है, जिसका भौतिक भोग परायण व्यक्ति अनुभव ही नहीं कर सकता।

सोम के अनेक अर्थ

वेद के अन्य शब्दों की तरह सोम शब्द के आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दृष्टि से और भी अनेक अर्थ हैं। सोम शब्द आध्यात्मिक दृष्टि से परमेश्वर का वाचक है जिसके लिए—

सोमो हि प्रजापतिः ।। (शत. ५।१।५।२६)
सोमो वै प्रजापतिः ।। (शत. ५।१।३।८)
यो वै विष्णुः सोमः सः ।। (शत. ३।३।४।२१, व ३।६।३।१९)

इत्यादि प्रमाण अत्यन्त स्पष्ट हैं।

इतना ही नहीं वेद मंत्रों में भी सोम का अर्थ परमेश्वर है, इसमें किसी प्रकार का कोई सन्देह ही नहीं हो सकता।

त्वमिमा ओषधिः सोमविश्वास्त्वमपी अजनयस्त्वंगाः ।
त्व मात तन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो विथर्थ ।।

—ऋ. १।९१।२२।।

अर्थात् हे सोम परमेश्वर ! तू ही इन ओषधि, वनस्पतियों, जलों और पृथिवी तथा गाय आदि पशुओं को उत्पन्न करता है। तू अन्तरिक्ष का विस्तार करता है और अपनी ज्योति से अन्धकार को दूर करता है। क्या इस प्रकार का वर्णन सोम रस आदि पर चरितार्थ हो सकता है।

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ।।

—ऋ. ९।९६।५।।

यहाँ आप देखेंगे कि सोम बुद्धियों का द्युलोक, पृथिवी लोक, अग्नि, सूर्य, विद्युत् और यज्ञादि का उत्पादक बताते हुए कहा है कि वह सबको पवित्र करता

है । इस प्रकार पूर्णतः स्पष्ट है कि यह वर्णन वेद में परमेश्वर परक है जो सर्वोत्पादक और पवित्र करने वाला है ।

पवस्व सोम महान् समुद्रः पिता देवानां विश्वा भिधाम ।।

—ऋ. ९।१०९।४।।

यहाँ भी सोम को सम्बोधन करते हुए कहा गया है कि तू शान्ति, ज्ञान, आनन्दादि का (महान समुद्र.) बड़ा समुद्र है, तू (देवानांपिता) सूर्य, चन्द्र नक्षत्रादि प्रकाशक पदार्थों और सत्यनिष्ठ ज्ञानियों का (पिता) पिता तथा रक्षक है (विश्वा-धामअभि) तू सब जगह व्यापक है । ऐसा तू हमें पवित्र कर ।

विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वस प्रभोस्ते सतः परियन्ति केतवः ।
व्यानशिः पवसे सोम धर्मभिः पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ।।

—ऋ. ९।८६।५।

अर्थात् हे सोम ! तू विश्वचक्षा—सर्व द्रष्टा और महान् सदा स्वरूप प्रभु है, तू (विश्वाधामानि) सब जगह विद्यमान है । तेरे (केतवः) तेज की किरणें सब जगह फैल रही हैं । तू अपनी धर्मभिः) धारक शक्ति से (व्यानशि—सबसे) सर्वत्र व्याप्त होकर पवित्र करता है । तू (विश्वस्य भुवनस्य राजसि) सारे संसार का राजा है ।

इस प्रकार अन्य भी सैकड़ों मंत्रों को उद्धृत किया जा सकता है जो अनेक प्रकार से स्पष्टतया सूचित करते हैं कि वेदों में सोम परमेश्वर के अतिरिक्त ज्ञानमय भक्ति के आध्यात्मिक मद का भी सूचक है । इसे न समझकर कतिपय विद्वानों का यह लिखना कि वह (भौतिक) सोम का रस पीकर नशे में चूर रहते थे, सर्वथा अशुद्ध ही नहीं पूर्ण भ्रान्तमय है, इसमें सन्देह नहीं । इन उपर्युक्त मन्त्रों में सोम को ऋत अर्थात् सत्य और वेद से उत्पन्न सत्य के कारण ही प्रसिद्ध, ज्ञान को धारण करने वाला, दिव्य अमृत, पृथिवी, प्रकाश और सारी प्रजा के लिए शान्ति और पवित्रता का कारण बताया गया है । क्या कोई मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति भी शराब जैसी वस्तु का ऐसा वर्णन कर सकता है ।

सुप्रसिद्ध योगी श्री अरविन्द जी ने भी सोम का परमेश्वर और दिव्य आनन्द परक अर्थ वेद रहस्य में बतलाया है । उन्होंने आनन्द और अमरता का अधिपति, नामक अपने इस शीर्षक लेख में लिखा है कि "सोम" आनन्द के रस का; अमृत रस का अधिपति है । सोम रस जो बाह्य यज्ञ में प्रयुक्त किया जाता है इसी आनन्द रस का प्रतीक है । सोम आनन्द का अधिकारी है । वह सच्चा रचयिता है जो कि आत्मा को धारण करता है और आत्मा में से एक दिव्य रचना को उत्पन्न कर देता है ।

सोम का आधिभौतिक अर्थ

इसके अतिरिक्त वैदिक वाङ्गमय में आधिभौतिक या सामाजिक दृष्टि से भी सोम शब्द का प्रयोग सौम्य-गुणयुक्त विद्वान के लिये किया गया है। यह बात वेद के मंत्रों से स्पष्ट है, जहाँ उसके लिये कवि शब्द का प्रयोग पाया जाता है।

आपवस्वमदिन्तम पवित्रं धारया कवे। अर्कस्ययोनि मासदम्

—ऋ. ९।५०।४।

तथापि सुमिधा गातुविद्विश्वदेवः सोमः पुनानः सद एति नित्यम्।
भुवद्विश्वेषु काव्येषु रन्ताऽनु जनान् यतते पञ्च धीरः॥

—ऋ. ९।९२।३।

यहां बताया गया है कि सोम (सुमेधाः) उत्तम बुद्धि सम्पन्न है, वह (गातुवित्) श्रेष्ठ धर्म मार्ग का जानने वाला और (विश्वेषु काव्येषु रन्ता भुवत्) सब शष्यों में रमण करने वाला—उनका मनन करने वाला (पुनानः) सबको पवित्र करने वाला होकर (नित्यं सद् एति) नित्य सभाओं में आता है और (धीरः) धैर्य-शाली होकर (पञ्चजनान् अनुयतते) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र और निषाद सबके कल्याण के लिए प्रयत्न करता है।

इस प्रकार यह वर्णन सोमलता परक तो हो ही नहीं सकता, न यह परमेश्वर का ज्ञानमय भक्ति रस परक है। यह तो स्पष्टतः शान्त विद्वान् का वर्णन है जिसे विद्वानों के शब्दों में गुरुकुल का स्नातक भी कह सकते हैं।

इसके अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रन्थों में भी सोम के अनेक अर्थ बताये गये हैं। यहाँ तक कि महर्षि दयान्द सरस्वती जी ने भी अनेक वेदभाष्य में आध्यात्मिक दृष्टि से ४ व आधिभौतिक दृष्टि से ९ तथा आधिदैविक दृष्टि से ९ इस प्रकार कुल मिलाकर २२ अर्थ सोम के महर्षि ने किये हैं। जिनका प्रकरणानुसार प्रयोग करने से वेद मंत्रों का ठीक अर्थ ज्ञात हो सकता है और अनेक प्रकार के भ्रमों से विद्वान् लोग बच सकते हैं।

सुश्रुत में भी सोम का बहुत विस्तार के साथ वर्णन है। वह सोमलता काया कल्प कर देती है। इसमें इन लताओं के नाम इस प्रकार है। अर्थात्—अंशुमान मुंजवान्, चन्द्रमा, रजत प्रभ, इवी, सोम, कनीपान, श्वेताक्ष, कनकप्रभ, प्रतानपान्, ताम्रवृन्त, करवीर, अंशवान् स्वयम्प्रभ, महासोम, गरुहव, गापल्य, त्रैष्टुभ, पांक्त, जागत, शांकर, अग्निष्टोम, रैवत, त्रिपप गाथल्य और उडुपति इस प्रकार इन २४ प्रकार की औषधियों का नाम भी ग्रन्थों में विद्यमान है।

D—23 सिविल लाइन्स बून्दी

'सोम' उपनिषदों के सन्दर्भ में

—डा. जगदेव विद्यालङ्कार

वेदों और अन्य वैदिक साहित्य के समान उपनिषदों में यद्यपि सोम का व्यापक उल्लेख तो नहीं है किन्तु फिर भी अनेक प्रसंगों में सोम की चर्चा की गई है। उन स्थलों के अध्ययन से हमें सोम के प्रति उपनिषदों के दृष्टिकोण का परिज्ञान हो जाता है। जैसा कि सर्वविदित है कि उपनिषदों का प्रमुख विषय आध्यात्मिक-विद्या है, अतः उपनिषदों में सोम का जो स्वरूप पाया जाता है वह भौतिकता के साथ-साथ आध्यात्म परक भी है। उपनिषदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सोम शब्द को उपनिषदों ने औषधि अर्थ के साथ-साथ विभिन्न प्रतिकार्थों तथा आलंकारिक अर्थों में भी प्रयुक्त किया है। जिसमें प्रमुख अर्थ हैं—सोमलता, ईश्वर, जीव, चन्द्रमा, सोम-तत्त्व प्रधान पदार्थ एवं गुण, जलीय वाष्प और व्यक्ति बोधक सोम आदि। एकादशोपनिषदों में अन्वेषण करने से हमें नौ स्थलों पर, बृहदारण्यकोपनिषद् में छह स्थलों पर छान्दोग्योपनिषद् में दो स्थलों पर, मुण्डकोपनिषद् तथा एक स्थान पर श्वेताश्वरोपनिषद् में सोम शब्द का प्रयोग मिला है। इस निबन्ध में उन्हीं स्थलों पर विचारविमर्श करने के उपरान्त सोम के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

१. सोमलता—व्यावहारिक रूप में सोम शब्द का सबसे प्रसिद्ध अर्थ सोम नामक औषधि है। आयुर्वेद में सोम के गुणों एवं उत्पत्ति स्थानों का वर्णन बहुत स्पष्ट रूप से किया गया है। उससे हमें ज्ञात होता है कि हिमाचल सोम का प्रमुख उत्पत्ति स्थान था और वहां उत्पन्न सोम को ही गुणों में सर्वोत्तम माना गया है। प्रतीत होता है कि औषध की दृष्टि से सोम सब औषधियों से बढ़-चढ़ कर था। इसी कारण अन्य वैदिक साहित्य के समान उपनिषदों में भी उसे सोम राजा की पदवी दी गई है।[१]

बृहदारण्यक के एक प्रसंग के प्रश्नोत्तर शैली में यह बतलाया गया है कि सोम उत्तर दिशा में प्रतिष्ठित है जिसकी संगति कई टीकाकारों ने आयुर्वेद के उन

१. ·······सोमो राजा संभवति ।।बृहदारण्यक ६,२,९।।

वचनों से लगाई है कि सोम उत्तर में हिमालय पर्वत पर उत्पन्न होता है उपनिषद् का निम्न वचन द्रष्टव्य है—"किं देवतोऽस्यामुदीच्यां दिश्यसीति सोम देवत इति"।[1]

इसी प्रकार सोम के अन्य स्थलों पर भी व्याख्याकारों ने अन्य अर्थों के साथ सोम औषधि का अर्थ भी प्रसंगानुसार ग्रहण किया है।

२. ईश्वरवाची सोम—श्वेताश्वरोपनिषद् में योग द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति के प्रसंग में बतलाया गया है कि वह परमात्मा सोम अर्थात् शान्तिस्वरूप और शान्ति-दायक है, जगत् का सृष्टा है समाधि अवस्था में हृदय में उसी का मन्थन अर्थात् चिन्तन किया जाता है।[2] बृहदारण्यक में प्रसिद्ध भाष्यकार पण्डित शिवशंकर शर्मा ने सभी दिशाओं में परमात्मा की व्यापकता प्रदर्शित करते हुए उत्तर दिशा में सोम देवता रूप परमात्मा की व्यापकता का वर्णन किया है और बताया है कि इस परमात्मा को हृदय में सत्य की प्रतिष्ठा होने पर प्राप्त किया जा सकता है।[3]

३. जीवात्मा—छान्दोग्योपनिषद् में यद्यपि सोम औषधि का वर्णन है किन्तु जीव की दशा का प्रसंग होने से पण्डित शिवशंकर ने आध्यात्मिक शैली में सोम का अर्थ जीव भी किया है।[4] इसी तरह बृहदारण्यक में एक स्थल पर डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार ने सोम का "आत्म-तत्त्व" अर्थ ग्रहण किया है।[5]

४. चन्द्रमा—उज्ज्वलता, शीतलता, सौम्यता तथा शुक्लता आदि गुणों की अत्यधिक समानता होने के कारण वैदिक और लौकिक संस्कृत साहित्य में चन्द्रमा और सोम के नाम प्रायः एक ही हैं। यही कारण है कि उपनिषदों में सोम शब्द को चन्द्रमा के पर्याय के रूप में प्रयुक्त किया गया है। मुण्डकोपनिषद् में सृष्टि के पदार्थों की उत्पत्ति बतलाते हुए सोम शब्द के द्वारा चन्द्रमा की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है।[6]

---

१. बृहदारण्यक ३,९,२३॥
२. सोमो यत्रातिरिच्यते तत्र संजायते मनः ॥श्वेताश्वतर ६,२॥
३. किन्देवत इति। सोमो देवता यस्य सःसोम देवतः। ईश्वरे औषधिषु च सोम शब्दः। बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यम्—पंडित शिवशंकर शर्मा प्रकाशन-वैदिक यन्त्रालय अजमेर पृ. ३५७
४. यद्यपि सोम इति जलस्य संज्ञा तथापि तज्जलसंसर्गात् सैव संज्ञा जीवस्यापि भवति। ५।१० छान्दोग्योपनिषद् भाष्यम्-पंडित शिवशंकर शर्मा, प्रकाशन-हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर, रोहतक पृ. ६६३
५. 'आत्म तत्त्व के बीज का नाम ही सोम है।' एकादशोपनिषद्—डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार प्रकाशन—चन्द्रावती लखनपाल सोसायटी ४/२४ आसफअली रोड, नई दिल्ली, पृ.६८८
६. सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः ॥ मुण्डक २,१,६ ॥

वचनों से लगाई है कि सोम उत्तर में हिमालय पर्वत पर उत्पन्न होता है उपनिषद् का निम्न वचन द्रष्टव्य है—"किं देवतोऽस्यामुदीच्यां दिश्यसीति सोम देवत इति"।[1]

इसी प्रकार सोम के अन्य स्थलों पर भी व्याख्याकारों ने अन्य अर्थों के साथ सोम औषधि का अर्थ भी प्रसंगानुसार ग्रहण किया है।

२. ईश्वरवाची सोम—श्वेताश्वरोपनिषद् में योग द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति के प्रसंग में बतलाया गया है कि वह परमात्मा सोम अर्थात् शान्तिस्वरूप और शान्तिदायक है, जगत् का सृष्टा है समाधि अवस्था में हृदय में उसी का मन्थन अर्थात् चिन्तन किया जाता है।[2] बृहदारण्यक में प्रसिद्ध भाष्यकार पण्डित शिवशंकर शर्मा ने सभी दिशाओं में परमात्मा की व्यापकता प्रदर्शित करते हुए उत्तर दिशा में सोम देवता रूप परमात्मा की व्यापकता का वर्णन किया है और बताया है कि इस परमात्मा को हृदय में सत्य की प्रतिष्ठा होने पर प्राप्त किया जा सकता है।[3]

३. जीवात्मा—छान्दोग्योपनिषद् में यद्यपि सोम औषधि का वर्णन है किन्तु जीव की दशा का प्रसंग होने से पण्डित शिवशंकर ने आध्यात्मिक शैली में सोम का अर्थ जीव भी किया है।[4] इसी तरह बृहदारण्यक में एक स्थल पर डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार ने सोम का "आत्म-तत्त्व" अर्थ ग्रहण किया है।[5]

४. चन्द्रमा—उज्ज्वलता, शीतलता, सौम्यता तथा शुक्लता आदि गुणों की अत्यधिक समानता होने के कारण वैदिक और लौकिक संस्कृत साहित्य में चन्द्रमा और सोम के नाम प्रायः एक ही हैं। यही कारण है कि उपनिषदों में सोम शब्द को चन्द्रमा के पर्याय के रूप में प्रयुक्त किया गया है। मुण्डकोपनिषद् में सृष्टि के पदार्थों की उत्पत्ति बतलाते हुए सोम शब्द के द्वारा चन्द्रमा की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है।[6]

---

१. बृहदारण्यक ३,९,२३।।
२. सोमो यत्रातिरिच्यते तत्र संजायते मनः ।।श्वेताश्वतर ६,२।।
३. किन्देवत इति। सोमो देवता यस्य सःसोम देवतः। ईश्वरे औषधिषु च सोम शब्दः। बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यम्—पंडित शिवशंकर शर्मा प्रकाशन-वैदिक यन्त्रालय अजमेर पृ. ३५७
४. यद्यपि सोम इति जलस्य संज्ञा तथापि तज्जलसंसर्गात् सैव संज्ञा जीवस्यापि भवति। ५१० छान्दोग्योपनिषद् भाष्यम्-पंडित शिवशंकर शर्मा, प्रकाशन-हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर, रोहतक पृ. ६६३
५. 'आत्म तत्त्व के बीज का नाम ही सोम है।' एकादशोपनिषद्—डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार प्रकाशन—चन्द्रावती लखनपाल सोसायटी ४/२४ आसफअली रोड, नई दिल्ली, पृ.६८८
६. सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः ।। मुण्डक २,१,६ ।।

बृहदारण्यक में चन्द्रमा के ब्रह्मत्व का निषेध करते हुए अजातशत्रु ने चन्द्रमा की शुक्लता के कारण चन्द्रमा को सोम राजा कहा है।[1] सौम्य गुण की समानता होने के कारण छान्दोग्योपनिषद् में पण्डित शिवशंकर शर्मा ने 'सोमेन' मुखेन का अर्थ चन्द्रवत् मुख किया है।[2]

५. सोम-तत्त्व-प्रधान पदार्थ एवं गुण—सृष्टि के पदार्थों की उत्पत्ति बतलाते हुए अन्न को, जोकि सात्त्विक भोज्य पदार्थों का प्रतिनिधि है सोम शब्द से अभिहित किया गया है। वहां बीजरूप स्निग्ध अथवा भोज्य सृष्टि तत्त्वों को सोम और भोक्ता सृष्टि तत्त्वों को अग्नि मानकर वैज्ञानिक शैलो में सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन है। उपनिषद् का वचन द्रष्टव्य है—"अथ यत्किञ्चेदमार्द्रं तद्रेतसोऽसृजत तदु सोम एतावद्वा इदं सर्वमन्नं चैवान्नादश्च सोम एव अन्नमग्निरन्नादः सैषा ब्रह्मणोऽतिसृष्टिः।[3]

छान्दोग्योपनिषद् के एक प्रसंग में सोम राजा को देवताओं का अन्न कहा गया है जिसका अर्थ डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार ने अमृत किया है। उपनिषद् के वचनों से इस वैज्ञानिक तथ्य का संकेत मिलता है कि संसार के दिव्य पदार्थ जिस कारण-रूप ऊर्जा शक्ति को प्राप्त करके अस्तित्ववान् रहते हैं वहीं ऊर्जा शक्ति सोम है जिसे बृहदारण्यक ने बीज-तत्त्व कहा है—" एष सोमो राजा तद्देवानामन्नं तं देवा भक्षयन्ति।[4]

श्वेताश्वतरोपनिषद् में व्याख्या भेद से पण्डित भीमसेन शर्मा ने भी सोम का सात्त्विक भोज्य पदार्थ अर्थ ग्रहण किया है उनका भाव है कि समाधि अवस्था में पहुँचने पर साधक को सोमगुण युक्त भोज्य-पदार्थों से भी मन को हटा लेना चाहिए तभी मन समाधि में रम सकेगा।[5]

उपनिषदों में सोम के बाह्यगुणों की समानता के आधार पर भी कुछ वर्णन उपलब्ध होते हैं। बृहदारण्यक में श्वेतता-शुक्लता गुण के आधार पर चन्द्रमा को

---

१. ....वृहत् पाण्डरवासाः सोमो राजेति....।। बृहदारण्यक २,१,३ ।।
२. बहुकाल ब्रह्मचर्य व्रतेन तदीय मुखं चन्द्रवत् सर्वेषामाह्लादकरं भवति ।।३,९,१।। छान्दोग्योपनिषद्भाष्यम्—पं. शिवशंकर, प्रकाशन—हरयाणा साहित्य संस्थान गुरुकुल झज्जर, पृ. ३९४
३. बृहदारण्यक १,४,६ ।।
४. छन्दोग्य ५,१०,४ ।।
५. ....यत्र च सोम प्रधानं भोज्यमतिरिच्यते त्यज्यतेऽल्पीक्रियत उत्तम भोजनवस्त्र धारणादितो मनः आकृष्यते....।। श्वेता. २,६ ।। उपनिषत्समुच्चय—पं. भीमसेन, प्रकाशन-हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर, पृ. ३०५

सोमसंज्ञा से **वर्णित किया है।**[1] **इसी** प्रकार एक आख्यायिका में श्वेत वस्त्रधारी होने से एक **पुरुष** को सोम सम्बोधन से सम्बोधित किया गया है।[2] छान्दोग्योपनिषद् में 'सोमेन मुखेन' की व्याख्या के प्रसंग में कई व्याख्याकारों ने सौम्याकृति का ग्रहण किया है जो कि सोम की कोमलता और स्निग्धता की ओर इंगित करता है।

६. **जलीय वाष्प**—उपनिषदों में सृष्टि उत्पत्ति की प्रक्रिया और पदार्थों के निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन पर्याप्त गम्भीरता और वैज्ञानिकता के साथ प्रदर्शित किया गया है। उस प्रक्रिया के अनेक तथ्यों को आज का विज्ञान भी स्वीकार करता है। इसी प्रक्रिया में हमें सोम शब्द का प्रयोग कई स्थानों पर मिलता है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि प्रकाश और आर्द्रता में जीवाणुओं की उत्पत्ति होती है। बृहदारण्यक में इसी उत्पत्तिमूलक आर्द्रता को सोम कहा है।[3] इसी प्रकार अग्नि से वाष्प की उत्पत्ति होती है और वाष्प से वर्षा होती है। जैसे यज्ञ में डाली गई आहुतियों से वर्षाकारक वाष्प उत्पन्न होकर वर्षा कराने में कारण बनती है, उसी प्रकार इस सृष्टि-प्रक्रिया रूपी यज्ञ में अग्नि से जलीय वाष्प उत्पन्न होती है उस जलीय वाष्प का संघात मेघों के रूप में बनकर वर्षा कराता है। उपनिषदों में इसी जलीय वाष्प को "सोम" शब्द के द्वारा उल्लिखित किया है। छान्दोग्य और बृहदारण्यक में से प्रसंग आते हैं।[4]

व्यक्ति बोधक सोम—उपर्युक्त अर्थों के अतिरिक्त उपनिषदों के दो स्थलों पर हमें कथानकों के प्रसंग में सोम नामक दो व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है जिनमें एक सोम नामक ऋषि है, जो कि निरुक्त अर्थात् स्पष्ट गायन शैली के सामगान का प्रणेता माना गया है।[5] दूसरा बृहदारण्यक में वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति दिखलाते हुए सोम नामक क्षत्रिय देवता का उल्लेख किया गया है।[6]

इस प्रकार उपनिषदों में सोम का स्वरूप प्रयोग होते हुए भी अनेक महत्त्वपूर्ण अर्थों की अभिव्यक्ति इसके द्वारा की गई है। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल में लौकिक व्यवहार, धर्म, अध्यात्म, आयुर्वेद आदि सभी क्षेत्रों में सोम का अत्यधिक महत्त्व था। इसी महत्त्व के कारण इस शब्द को विभिन्न अर्थों एवं प्रतीकों में संयोजित किया गया।

---

१. बृहदारण्यक—२,१,३ ॥
२. बृहदारण्यक—२,१,१५ ॥
३. बृहदारण्यक—१,४,६ ॥
४. छान्दोग्य ५,४,२ तथा ५,५,२ ॥ बृहदारण्यक—६,२,९ तथा ६,२,१० ॥
५. ····निरुक्तः सोमस्य········॥ छान्दोग्य २,२२,१ ॥
६. तच्छ्रेयो रूपमत्यसृजत् क्षत्रं यान्येतानि देवत्रा क्षत्राणीन्द्रो वरुणः सोमोरुद्रः पर्जन्यो यमो मृत्युरीशान इति ॥ बृहदारण्यक १,४,११ ॥

★

सोम का वैदिक स्वरूप

—प्रभावती पारीक

वैदिक धर्म तथा संस्कृति का एक विचित्र रहस्य है। सोम वैदिक कर्मकाण्ड का प्रमुख अंग है। फलतः सोम को ऋग्वेद के सबसे महान् देवों में स्थान दिया गया है। वैदिक संहिताओं का दशम अंश सोम की स्तुति एवम् प्रशंसा के रूप में मिलता है। यज्ञ का उपकारक होने से सोम, सोमलता व सोम-रस की अत्यधिक महिमा वेदों में वर्णित है। सोम द्वादश आदित्यों में परिगणित देव है। औषधि है तथा चन्द्रमा है। वैदिक वाङ्मय में पुनः पुनः सोम चर्चित है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि—

"सोमोऽस्माकम् ब्राह्मणानां राजा"

अभिषेक के अवसर पर कथित इस वाक्य का अभिप्राय है कि सोम देवता ब्रह्म अर्थात् ज्ञान के अधिष्ठाताओं का राजा है।

यदि यज्ञ के संभार की दृष्टि से देखा जाये तो सर्वाधिक मूल्यवान एवम् शक्तिशाली औषधि है। आरोग्य, आनन्द, आयु, वीर्य, प्रतिभा व मेधा आदि प्रदान करने वाला है। लाक्षणिक रूप से सोम का देववत् महत्त्व है।

'सोम' शब्द की व्युत्पत्ति—

निरुक्त के एकादश अध्याय के प्रथम पाद में सोम के विषय में लिखा है—

"औषधिः सोमः सुनोतेः यत्
एनम् अभिषुण्वन्ति ॥"

अर्थात् सोम औषधि है यह सोम शब्द अभिषवार्थक 'षुञ् अभिषवे' से बना है क्योंकि सोम को निचोड़ कर निकालते हैं। प्रेरणार्थक एवम् उत्पादनार्थक सू से भी 'सोम' शब्द की व्युत्पत्ति सम्भव है।

जब हम प्रेरणार्थक तथा उत्पादनार्थक—सू से सोम की व्युत्पत्ति करते हैं तो हमारे सम्मुख सोम शब्द का अत्यन्त रहस्यमय और व्यापक अर्थ प्रकट होता है जो कि पेय पदार्थ से हटाकर हमें उस परब्रह्म की ओर ले जाता है जिसमें उपहित रूप से इस लीलामय विश्व का प्रसव हुआ है। 'सोम' शब्द का 'प्रेरण' अर्थ हमें

जगत् अर्थात् चलने वाला एवं संसार अर्थात् सरण करने वाला, इन दो अभिव्यक्तियों को प्रकट करने वाला बन जाता है और जब हम इन दोनों भावों को मिलाते हैं तो यह 'सोम' संसार को प्रवर्तित करने वाला दिखाई देता है। यह सोम ही संसार के कण-कण को आपस में संश्लिष्ट करके उन्हें धारण करने वाला दिखाई देता है। यही जीवन का चरम-रस सोम है जो उपनिषदों में अभिव्यक्त दिखाई देता है--

"रसो वै सः। रस ह्वेवायं लब्ध्वानन्दी भवति"।

इस सोम का आस्वादन करते ही आर्यों का हृदय अलौकिक आनन्द के उन्मेष से खिल उठता था और उनकी ऋतम्भरा वाणी "अहं मनुरभवं सूर्यश्च" तथा "अपाम सोमममृता अभूम" के रूप में फट पड़ती थी।

वैदिक आर्यों ने सोम वर्णन को उन्मेष तथा उद्दीपन की पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया। यहां सोम एक पेय मात्र न रहकर आर्यों की तवरा-त्वरा और उनके ऋतु-ऋतु का प्रतीक बन गया है। हमें इसमें आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक विभूतियों के सारे रूप निखरे हुए दीख पड़ते हैं। ऋग्वेद के नवम मण्डल के अनुसार जीवन का चरम लक्ष्य गति, ऋत, ऋतु, रूप धर्म है। आर्यों में इनका प्रतीक सोम को माना है।

वैदिक साहित्य में सोम-लता के उद्गम स्थल हिमलयस्थ मूजवान् पर्वत, शर्यणावान् झील, व्यास नदी, सिन्धु, सुषोमा आदि बताये हैं। ऋग्वेद के ९-११३-२ में सोम की उत्पत्ति ऋजीक पर्वत पर बताई गई है।

सोम रस के विश्लेषण करने पर हम जीवन के सारभूत परम रस परब्रह्म तक पहुँच जाते हैं जो अपनी स्वाभाविक गति से संसरणशील संसार व गमनशील जगत् का प्रवर्तक है व रसमयता के कारण विश्व के अणु-अणु को आबद्ध किये हैं।

ऋग्वेद में स्थान-स्थान पर सोम का अनूठा वर्णन उपलब्ध है किन्तु ऋग्वेद का नवम मण्डल सोम की अर्चना के लिए समर्पित है। यह सोम मण्डल या पवमान मण्डल के नाम से प्रख्यात है। वहाँ सोम के विषय में लगभग १२० सूक्तों में यह वर्णित है।

"तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः।
तरत्स मन्दी धावति। (ऋग्वेद ९।५८।१)

अर्थात् जो स्तोता सोम की स्तुति करता है वह पापों से तर जाता है। मन्त्रों से पवित्र व वाणी से स्तुत आनन्द रस सोम की धारा से उर्ध्व गति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है।

सोम-पान यज्ञ रहित मनुष्य नहीं कर सकता। सोम शोधित, मधुर, यज्ञोपयोगी, क्षरणशील, स्वादिष्ट, रसधारा, अन्नदाता, धन-प्रापक व आयु का दाता है। दिन में सोम रहित वर्ण व रात्रि में सरलगामी व प्रकाशमान दिखाई देते हैं। सोम अनेक धाराओं से युक्त व सुन्दर गन्ध से सम्पन्न है। मदकर सुखकारी, रसात्मक व अरुण वर्ण है। ऋग्वेद के १।४९।६ में सोम को यज्ञ की नाभि बताया गया है।

सोम का अंश द्युलोक में है। वहाँ से सोम के अंश पृथिवी के उन्नत प्रदेश (पर्वत) पर गिरे और वृक्ष हो गये। पत्थरों से कूटे जाकर सोम को मेधावी लोग हाथों से गोचर्म पर जल को दुहते हैं। सोम के शोधक गोचर्म व मेषचर्म हैं। बाद में इसे आहवनीय पात्र में डालकर उसमें जल छोड़ते हैं व वल्ली को मल-मलकर पानी में मिला देते हैं। तलछट बाहर निकाल कर दशापवित्र वस्त्र द्वारा छानकर इस तरह बाँधते हैं कि सोम रस की धार छनती हुई गिरती जाये। देवता के प्रीत्यर्थ इससे पहले हवन करते हैं, बचे हुये अवशिष्ट भाग को ३३ देवता, सदोमण्डप में हवन करने वाले वषट्कार कहने वाले ऋत्विक् यजमान, सहस्रक आदि हविः शेष के रूप में ग्रहण करते हैं।

सोम का व्यवहार यज्ञ के समय ही होता था। सभी देवता सोम के अभिलाषी हैं। परन्तु आर्यों में प्रमुख देव इन्द्र की सोम-लिप्सा सर्वोपरि है। सोम इन्द्र का प्रियतम पेय है। इन्द्र के सभी पौरुष कृत्यों का सोम के साथ संबंध है।

"स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया
इन्द्राय पातवे सुतः। (ऋग्वेद ९।१।१)

अर्थात् अत्यन्त स्वादु व मदोत्पादक धारा से निचोड़ा हुआ हे सोम! तू इन्द्र के पान के लिए स्रवित हो।

सोमपान से इन्द्र के उत्साह व शौर्य में अभिवृद्धि होती है। यह वीरतामय कार्यों को सम्पादित करता है। रण-क्षेत्र मैं वृत्र-वध करता है। शंबर जैसे दानवों को हँसते-हँसते पहाड़ों से नीचे मार गिराता है। विद्युत् की चमक इन्द्र के पौर-पौर से उत्पन्न चमक है। इन्द्र सार्वजनिक श्रमदान करता है। अकेला सात-सात नदियाँ प्रवाहित कर देता है। इन्द्र के अशेष पराक्रमों में सोम-पान का महत्त्व सुव्यक्त है। सोम-पान से अमरत्व की सद्यः प्राप्ति है। यज्ञ में सोम-पान से यजमान को अलौकिक लोक की प्राप्ति, अखण्डआनन्दानुभूति व श्रेय प्राप्ति होती है।

सोम एक पार्थिव दिव्य लता है। वस्तुतः इसके मूल व आवास स्वर्ग में माने गये हैं। सोम स्वर्ग का पुत्र है, स्वर्ग का दुग्ध है, स्वर्ग में शुद्ध किया जाता है, स्वर्ग का पति है और यहीं से श्येन के द्वारा इन्द्र के लिए भूतल पर लाया गया।

"स त्वामदद् वृषा मदः
सोमः श्येनाभृतः सुतः ।।" ऋग्वेद १।८०।२

ऋग्वेद के दो सूक्तों ४।२६, ४।२७ में सोम आनयन की कथा वर्णित है। ब्राह्मणों के अनुसार सोम को गायत्री लायी है जो अग्नि का रहस्यात्मक याज्ञिक नाम है।

औषधियों में सर्वश्रेष्ठ होने के कारण सोम वनस्पतियों का राजा है।

"सोमं नमस्य राजानं यो
जज्ञे वीरुधां पतिः।" ऋग्वेद १।११४।२

सोम मद के लिए अभिषुत है। ऊपर चढ़ने वाली लताओं व औषधियों को फलयुक्त करके स्वादिष्ट करते हैं। सोमलता में ओज, तेज, सुरभि, वर्चस्व आदि गुण भी हैं।

वेद मन्त्रों से ज्ञात होता है कि रणांगण में जाते समय भी आर्य सोम रस पीते थे, पीते ही उनमें उमंग, तरंग, प्रतिभा प्रस्फुटित होने लगती थी। स्फूर्ति, वक्तृत्व शक्ति बढ़ जाती थी, बुद्धि-वृद्धि विशेष गुण था। रस वृद्ध को तारुण्य प्रदान कर असीम बल देता था। शरीर रोग-रहित हो जाता था।

सोम-रस पीने वाली गायों के दुग्ध में भी आंशिक गुण आ जाते थे। इस कारण देव व मनुष्य सबकी इसमें अत्यधिक आसक्ति थी।

सोमलता, सोम रस, सोम देवता का रंग, बभ्रु, अरुण तथा हरित बताया गया है। इस प्रकार सोम एक अरुण वनस्पति की टहनी है। अलंकारिक शब्दों में सोम को पीयूष, दुग्ध, लता की उर्मि या मधु रस, इन्दु (चमकने वाला बूंद) कहा गया है। सोम स्रोतों के पति व सम्राट है। सोम की बूंदे स्रोतों में प्रकाश फैलाती है।

ऋग्वेद के अनुसार सोम का सवन दिन में तीन बार किया जाता था। प्रातः सवन में इन्द्र को प्रथमं भक्ष्य समर्पित किया जाता था।

सोम वह पेय है जो जलों में बढ़ता है अतः वह जल गर्भ है। जलों को प्रत्यक्षतः सोम की माता कहा है। दुहा हुआ सोम वृष्टि का भी बोधक है।

वैदिक वर्णन के अनुसार सोम में स्वाभाविक भैषज्य शक्ति भी है। रोगियों के लिए सोम निरामय व रसायन औषध है। मनुष्यों के अंग-रक्षक हैं। अन्धों को दृष्टि व गति प्रदान करते हैं। दार्घायु भी प्रदान करते हैं।

"प्रान्धं श्रोणं च तारिषद्विवक्षसे" ऋ. १०।२५।११

अनृत का विनाश व सत्य का संवर्धन करते हैं।

सोम शान्ति या आनन्द के देवता हैं। चेतन जगत की सर्वोत्तम सत्ता परमात्मा व जड़ जगत् की सर्वोत्तम वस्तु वीर्य दोनों में सोम हैं।

वायु देवता सोम रस की रक्षा करने वाले हैं। वायु सोम को नहीं सुखाते हैं। 'वायु गोपा वै वनस्पतय:' के अनुसार वे वायु से रक्षित हैं।

सोम संवत्सर व मास का निर्माता भी है।

सुश्रुत संहिता (अध्याय २९) में लिखा है कि सोम औषध अपने पत्तों से और चन्द्रमा अपनी कलाओं के साथ घटते-बढ़ते रहते हैं। शुक्ल पक्ष में जैसे चन्द्रमा एक-एक कला बढ़ते-२ पूर्णता को प्राप्त होते हैं वैसे ही सोम भी शुक्ल पक्ष में एक-एक पत्ता बढ़ते-२ पूर्णिमा को १५ पत्तों से युक्त हो जाता है। अमावस्या के चन्द्रमा की भाँति सोम के पत्ते भी लुप्त हो जाते हैं। आनन्दोल्लास प्रदाता होने के कारण व इन गुणों की समानता के कारण सोम चन्द्रमा (इन्दु) कहे जाते हैं। एवं यज्ञ में इनका आह्वान किया जाता है कि वे बर्हि पर बैठकर कुशासन ग्रहण करें।

सुश्रुत ने सोम के २४ प्रकार बताये हैं इसे कन्द कहकर केले के कन्द की तरह वर्णित किया है।

पाश्चात्य वेदाध्यायियों और अनुयायियों के सोमलता के संबंध में विभिन्न मत हैं। 'राजेन्द्र लाल मित्र' इसे 'वनस्पति' मानते हैं। 'मेक्समूलर' इसे 'आँवले का रस' व 'हिलेब्रान्ट' इसे 'मधु' कहते हैं। 'जुलियस एगलिंग' व 'ए. बी. कीथ' इसे एक प्रकार की सुरा मानते हैं। 'रागोजिन देवी' इसे 'सुरासव' कहते हैं। परन्तु ये सारे मत निराधार हैं इनमें से किसी में भी सोमलता की वर्णित गुणबोधकता नहीं है। मादक द्रव्य के रूप में कल्पना करना नितान्त अनुचित है

'पं. दुर्गादास लाहिड़ी' ने सोमलता को विशुद्ध और निष्कलंक ज्ञान' बताया है। 'मेडम ब्लावस्की' की राय में वेद का सोम ही बाइबिल का ज्ञानवृक्ष है पर यह कल्पना की उड़ान है।

वर्तमान समय में सोमलता अलभ्य है। आश्वलायन श्रौत सूत्र के अनुसार अनुकल्प यह है कि यज्ञों में सोमलता के स्थान पर 'पूतिक-तृण' अथवा 'फाल्गुन' नामक वनस्पति प्रयोग में लायी जाये।

अतः यह सिद्ध है कि लता रूपी सोम बहुत पहले ही लुप्त हो चुका था तथा इसका लाक्षणिक अर्थ ही शेष रह गया था। सृष्टि में व्याप्त आनन्द उल्लास तथा सुख को सोम कहा गया। ब्राह्मणों में कथित **"अग्निषोमात्मकं जगत्"** के अनुसार वह ब्रह्म का रस रूप सोम ही मूल भौतिक अग्नि में निरन्तर होकर इस सृष्टि का संचालन कर रहा है अतः सोम के स्वरूप का अन्वेषण आवश्यक है।

बी-३७ जयपुर—कृष्णापुरी,
सोडाला, जयपुर ३०२००६ (राज.)

सोम की विश्व विभूति

—अनन्त शर्मा

वेद ब्रह्म है। ब्रह्म परमात्मा, परमात्मा का नित्य ज्ञान सृष्टिमूल तथा सृष्टि है। वेद की यह व्यापकता उसके शब्दों की यौगिकता से ही सम्भव है। विद्वानों की मान्यता है कि वेद की प्रवृत्ति आधिदैविक, आध्यात्मिक, आधिभौतिक आधियाज्ञिक आदि अर्थों में है। इस दृष्टि से विचार करने से सोम के भी अनेक अर्थ सामने आते हैं।

वेद, वेद के अवयव ऋक् साम और यजुः सृष्टि के घटक तत्त्व हैं इनसे सृष्टि का निर्माण होता है:—

विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम् ।।
शरीरं ब्रह्म प्राविशद् ऋचः सामाथो यजुः ।। —अथर्ववेद ११.८.२३

विद्याएँ और अविद्याएँ इनसे अतिरिक्त वह सब कुछ जो उपदेश का विषय है, ब्रह्म ऋक् साम और यजुः से सब शरीर में प्रविष्ट हैं। वेद का यह विषय अन्यत्र भी अनेकशः आया है। महाभारत शान्तिपर्व में कहा गया है:—

वेदाँश्च वेद्यं च विधिं च कृत्स्न मथो निरुक्तं परमार्थतां च ।
सर्वं शरीरात्मनि यः प्रवेद तस्यैव देवाः स्पृहयन्ति नित्यम् ।। —२४५।३०

हरिवंश पुराण के भविष्य पर्व में भी बताया गया है:—

अव्यक्ताद् व्यक्तिमापन्नं स्वेनभावेन भारत ।
अन्तःस्थं सर्वभूतेषु चरन्तं विधया सह ।। —१८.२८

यहाँ शरीर का अर्थ महासमष्टि समष्टि और व्यष्टि तीनों प्रकार के शरीर हैं। सूर्य एक शरीर है उसका त्रयीत्व शतपथ ब्राह्मण में इस प्रकार वर्णित है:—

यदेतन्मण्डलं तपति तन् महदुक्थम् ता ऋचः स ऋचांलोकः अथ यदेतद् अर्चिः दीप्येत तन्महाव्रतम्, तानि सामानि, स साम्नां लोकः । अथ य एष एतस्मिन् मण्डले पुरुषः, सोऽग्निः तानि यजूंषि, स यजुषां लोक ।१। सैषा त्रय्येव विद्या तपति । तद् ह एतद् अपि अ विद्वांस आहुः—त्रयी वा एषा विद्या तपति—इति ।२। (१०.५.२)

यह जो मण्डल तपता है वह महदुक्थ है, वे (ही) ऋचाएँ हैं वही ऋचाओं का लोक है। यह जो अर्चि (तेजोमयज्वाला) दीप्त हो रही है यह महाव्रत है, वह साम है, वही साम-समूह का लोक है। इस मण्डल में जो पुरुष है वह अग्नि है, वही यजुस्समूह है यजुषों का लोक है। सूर्य के रूप में यह त्रयी विद्या ही तपती है।

सूर्यपिण्ड ऋक् है, इसको सर्वत्र प्रसार रूप व्याप्ति साम है। पृथ्वी सूर्य के साम में ही स्थित है। सूर्यपिण्ड का, केन्द्र से परिधि तक और परिधि से केन्द्र तक यातायात कर, धारक तत्त्व यजुः है। इस यजुः को ही वेद में पुरुष भी कहा है। 'योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्' (यजुर्वेद—माध्यन्दिनी संहिता—४०।१७) में स्पष्ट कथन है कि आदित्य में वह जो प्राणात्मक पुरुष है वह मैं हूँ। प्रत्येक पिण्डरूप पुर् में, भले हो वह चेतन हो या अचेतन हो—उसका धारक आत्मा पुरुष है।

इस दृष्टि से ऋक् यजु साम को क्रमशः मूर्तरूप घटक, गति और तेजः तत्त्व कहा जा सकता है जो ब्रह्म से ही सृष्ट हैं:—

ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्तिमाहुः
सर्वागति र्याजुषी हैव शश्वत्।
सर्वं तेजः सामरूपं हि शश्वत्,
सर्वं हीदं ब्राह्मणा हैव सृष्टम्॥ —तै. ब्रा. २।१२, गोपथ ब्रा. १।२।९

ऋक् से सभी मूर्तियों का, यजुओं से सभी गतियों का तथा साम से सभी तेजों का इस प्रकार यह सब कुछ ब्रह्म से ही निर्माण किया गया है।

ऋग्यजुस्साम को विविध रूपों में तत्त्व बताने वाले सैंकड़ो वाक्य वेद ब्राह्मणों तथा वैदिक वाङ्मय में हैं। यहाँ इन सभी के बहुलांश रूप में भी न तो उद्धरण को और न इनकी एक वाक्यात्मक व्याख्या को ही अवकाश है, केवल परिचय के रूप में स्वल्प सा निदर्शन दिया गया है।

ऋक् यजुः साम आदि भी परिणाम रूप परवर्ती अवस्था को लिये हुए हैं। जब इनसे भी आगे इनके मूल को देखने का यत्न करते हैं तो केवल दो ही तत्त्व दृष्टिगत होते हैं, वे हैं अग्नि और सोम।

अग्नि के विषय में वेद कहता है:—

अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाह मस्मि सख्ये न्योकाः॥

—ऋक् ५।४४।१५

विश्वेदेव परक अवत्सार काश्यप का यह सूक्त इसी मन्त्र पर पूर्ण होता है। ऋषि कहता है कि जाग्रत् अग्नि की उपासना ही ऋचाएँ और साम करते हैं, इसी को सोम भी कहता है कि मैं तुम्हारे सख्य में हूँ तथा तुम ही मेरे नियत ओक हो। अर्थात् तुम मेरा आश्रय हो।

सोम के विषय में भी वेद में इसी प्रकार के भाव हैं:—

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वा स्त्वमपो अजनय स्त्वं गाः।
त्वमाततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ॥

—ऋ. १।९१।२२

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही।
अथो नक्षत्राणामेषा मुपस्थे सोम आहितः॥ —ऋक् १०।८५।२

हे सोम! तुमने सब ओषधियों को जन्म दिया है, तुमने सभी आपः को, सभी गोओं को जन्म दिया है। तुमने अन्तरिक्ष का विस्तार किया इस उस अन्तरिक्ष को व्याप्त किया है, तुमने ज्योति से तम का विनाश किया है। सोम से आदित्य बल सम्पन्न हैं, सोम से पृथ्वी मही है। इन नक्षत्रों के उपस्थ में सोम आहित है।

जिस प्रकार सोम और अग्नि के वैशिष्टच को मन्त्रों में बताया गया है वैसा ही वैशिष्टच इन्द्र वरुण आदि अनेक देवताओं का भी बताया गया है। ऐसी स्थिति में अग्नि सोम को ही मूल मानने का क्या औचित्य है ऐसा प्रश्न नहीं उठता है? अग्नि अन्नाद है और सोम अन्न है अन्न अन्नाद का सम्बन्ध यज्ञ है। यज्ञ विश्व का प्रभव है। अतः अन्य देवों में ये गुण यदि हैं तो भी मूल कारण के रूप में नहीं हैं अतः उनका अग्नि सोम जैसा स्थान नहीं है और न उनकी ऐसी युति है।

प्रत्येक वस्तु में से प्रतिपल उसकी प्राणशक्ति का बहिर्गमन होता है तथा इस कारण से वह क्षयोन्मुख होती रहती है। यदि उसे बाहर से प्राणशक्ति प्राप्त न हो तो वह तत्काल विनष्ट हो जाती है। अतः प्रकृति का नियम है कि उसे बाहर से प्राणों की प्राप्ति होती रहती है। यह बाहर से प्राप्त प्राण वस्तु से आत्मसात् हो उसे बनाये रखता है। आत्मसात् होने की प्रक्रिया का नाम ही यज्ञ है।

ऊपर शतपथ ब्राह्मण के (१०.५.२.१-२) उद्धरण में महदुक्थ और महाव्रत शब्द आये हैं। बाहर निकलने वाले अंश यातत्व का नाम महोक्थ है तथा बाहर से भीतर आने वाले तत्त्व का नाम महाव्रत है। उत्थ—उठकर जाना—ही परोक्ष भाषा में उक्थ है। उत्थ शब्द 'उद्+स्था' से निष्पन्न होता है। उसे ही ब्राह्मणों ने इस प्रकार कहा है—उक्थम् इति बह्वृचाः (उपासते) एष हीदं सर्वमुत्थापयति। (शतपथ ब्रा. १०.५.२.२०)। उक्थैः उदस्थापयन्, तदुक्थानाम् उक्थत्वम्। (तैत्तिरीय ब्रा. २.२.८.७)।

महाव्रत अन्न का नाम है। अन्नं वै महाव्रतम्। (जैमिनीय ब्रा. २.३०३, ३०७, ३१९, ३५४) अन्नं महाव्रतम्। (तैत्ति. सं. ७.३.३.२)। निघण्टु में भगवान् यास्क कर्म नामों में तो व्रत को साक्षात् पढते ही हैं, निरुक्त २.१३.८ में कहते हैं— अन्नमपि व्रतम् उच्यते, यद् आवृणोति शरीरम्' अन्न को भी व्रत कहा जाता है क्यों कि वह रस रक्त मांस आदि के रूप में शरीर का अनेक रूपों में आवरण करता है।

सूर्य से प्रतिपल ऊर्जा का भण्डार निकलता है। इससे उसमें क्षति आती है। इसमें सोम की निरन्तर आहुति लगती रहती है। यह सोम जो कि महाव्रत-अन्न-है, आहुत होकर अन्नाद-अग्नि का रूप ले लेता है इससे सूर्य में दीप्ति आती है, यही 'सोमेन आदित्या बलिनः' का भाव है। सोम का अग्निरूप में परिणत होकर केन्द्र में अवस्थित होना यज्ञ का परिणाम है, सूर्य में यह प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है अतः सूर्य को अग्निहोत्र कहा गया है—'सूर्यो ह वा अग्निहोत्रम्' शत. ब्रा. २.३.१.१ अन्न और अन्नाद ही जगत् है, सोम अन्न है अग्नि अन्नाद है। इसीलिए 'अग्नीषोमात्मकं जगत्' का सिद्धान्त है।

सूर्य अग्नि है, अन्नाद है, सोम अन्न है, यह भाव अन्यत्र भी व्यक्त हुआ है:—

(क) आपो वा अन्नं ज्योतिः अन्नादम्, अप्सु ज्योतिः प्रतिष्ठितम् ज्योतिंषि आपः प्रतिष्ठिताः। (तैतिरीय आरण्यक ९-८)

(ख) प्राणो वा अन्नं शरीरमन्नादम्। (वही ९-७)

(ग) ओषधि वनस्पतयोऽन्नम्, प्राणभूतोऽन्नादम् ओषधि वनस्पतीन् हि प्राणभूतोऽदन्ति। (वही २-३-१)

इन कतिपय उद्धरणों से अन्न और अन्नाद का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। अन्न अन्नाद में आहुत होकर अन्नाद का रूप ले लेता है तथा अन्नाद पुनः अन्न की आकांक्षा करता है। यह क्रम निरन्तर चलता है। यह क्रम यज्ञ है।

यज्ञ में इन तीनों का भाव अन्नाद अन्न और परस्परानुग्रह की प्रक्रिया—है अतः किसी एक को भी यज्ञ कह दिया जाता है। जैसे—

(क) यज्ञो वा अग्निः। जैमिनीय ब्रा. २-२३०

(ख) यज्ञो वै सोमाः शुक्राः। जैमिनीय ब्रा. १९३

(ग) व्रतेन यज्ञः सन्ततः। मैत्रा. सं. ३-६-६-९ व्रत=अन्न.

(घ) हवींषि ह वा आत्मा यज्ञस्य। शत. ब्रा. १-६-३-३९

(ङ) यत् सोमं (यजति) यज्ञं तेन (यजति) मै. ३-७-१

जिस प्रकार अग्नि के अनेक रूप हैं वैसे ही सोम के अनेक रूप हैं। परिभाषा रूप में लेना चाहें तो जो कुछ शुष्क है वह आग्नेय है तथा जो कुछ आर्द्र है वह सौम्य है। शतपथ का प्रवचन है:—

द्वयं वा इदं न तृतीय मस्ति, आर्द्रं चैव शुष्कं च, यत् शुष्कं तद् आग्नेयं, यद् आर्द्रं तत् सौम्यम्। (१.६.३.२३)

इस आग्नेय और सौम्य के कुछ जोड़े शतपथ में यहीं बताये गये हैं:— सूर्य एव आग्नेयः चन्द्रमा सौम्यः, अहरेव आग्नेयं रात्रिः सौम्या, य एव आपूर्यतेऽर्द्धमासः स आग्नेयः, यः अपक्षीयते सः सौम्यः। २४। सूर्य दिन और शुक्ल पक्ष आग्नेय हैं, चन्द्रमा रात्रि और कृष्ण पक्ष सौम्य हैं। स्त्री (मादा) आग्नेयी है, पुरुष नर सौम्य है, रजः आग्नेय है शुक्र सौम्य है। सोम की अग्नि में आहुति ही प्रजनन याग है। जठराग्नि में अन्न की आहुति जीवन यज्ञ है। मस्तिष्क में विचार की आहुति स्वाध्याय यज्ञ है। यही भगवान् मनु का 'बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति' है। मन में सत्य की आहुति मनुष्यता है। पतञ्जलि ऋषि कहते हैं—सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफल श्रयत्वम्—क्रिया का कभी निष्फल न जाना, सदैव फलीभूत होना ही सत्य की प्रतिष्ठा है, यही 'मत्वा कर्माणिसीव्यति' वाले मनुष्य भाव को जीवित रखती है, मनस्वी सत्य का सहारा बनता है यह उत्तरोत्तर क्रम मनु द्वारा 'मनः सत्येन शुध्यति' से बताया गया है। यह वेद 'सत्यं यशः श्रीः सोमः' का अनुवाद है।

इस यज्ञ रूपा सृष्टि में सोम के अनन्त रूप हैं। सोम के उन रूपों को उसके कर्म और गुण के आधार पर पृथक्-पृथक् नाम देना विज्ञान है। एक को अनेक रूपों में देखना ही 'विविध रूपात्मक ज्ञान' अथात् विज्ञान है। सृष्टि में विविध रूपों में व्याप्त सोम को तत्तद् विभिन्न रूपों में न देखकर सृष्टि को सोमात्मक कह देना ज्ञान है। अनेक में एक को देखना ज्ञान है। वेद ज्ञान विज्ञान के सम्मिलित रूप में जीव जगत् और जगदीश की शिक्षा देता है। वेद का ब्रह्मविज्ञान ज्ञान है तथा यज्ञविज्ञान विज्ञान है। सभी विज्ञान ज्ञान में ही विश्रान्ति पाते हैं।

सोम की विविध रूपों में स्तुति विज्ञान है। निरुक्त में भगवान् यास्क कहते हैं—माहाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते। (७.४.८) एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यंगानि भवन्ति।९। अपि च सत्त्वानां प्रकृति भूभमि ऋषयः स्तुवन्ती त्याह।१०। प्रकृति सार्वनाभ्याच्च।११। इतरे तर जन्मानो भवन्ति ईसरेतर प्रकृतयः।१२। कर्मजन्मानः।१३। आत्मजन्मानः।१४। आत्मैवैषां रथो भवति, आत्मा अश्वः, आत्मायुधम्, आत्मा ईषवः, आत्मा सर्वं देवस्य देवस्य।१५।

विश्व में सर्वत्र महान् भाग होने के कारण देवता का एक ही रूप नाना प्रकार से स्तुति प्राप्त करता है। एक ही आत्मा—(मुख्य-देव)—के अन्य देव अंग

हो जाते हैं। देवों की प्रकृति की नानाविध व्याप्ति को दृष्टि में रखकर एक ही देव को तत्तद् अनेक रूपों में ऋषियों ने स्तुति की है। ये देव एक दूसरे को जन्म देने वाले होते हैं। एक दूसरे को प्रकृति होते हैं, विविध कर्म ही इनके विविध जन्म हैं ये स्वयम्भू हैं। इनका अपना प्रातिस्विक रूप ही इनका रथ अश्व आयुध बाण आदि अनेक रूप लेता है, इस प्रकार ये स्वयं ही स्वयं के सब कुछ हैं।

सोम के शतशः रूपों और गुणों की स्तुति इसी रूप में सार्थक है। सोम पवमान है मद कारक है आह्लयादजनक है रोग नाशकता के आधार पर दीर्घायुष्य प्रदान करने के रूप में अमृत है। तन मन बुद्धि और आत्मा ये चारों पर्व सोम से आप्यायित होते हैं। सोम की सत्ता जीवन सत्ता है जीवनीय शक्ति है जीवन की वृद्धि है। सोम का निर्माण ब्रह्मा आदि देवों ने किया था अर्थात् पार्थिव देवलोक के अधिष्ठाता ब्रह्मा ने अश्विनी आदि देवों की सहायता से सोम प्रधान औषधियों के विविध गुणों को वेद के आधार पर जानकर परीक्षण कर उन्हें व्यवहार्य रूप दिया। सुश्रुत संहिता में भगवान् धन्वन्तरि कहते हैं।

ब्रह्मादयोऽसृजन् पूर्व मभृतं सोमसंज्ञितम्।
जरामृत्युविनाशाय विधानं तस्य वक्ष्यते ।। चिकित्सास्थान २९.३

इस सोम के केवल औषधि रूप में स्थान नाम आकृति और वीर्य के भेद से मोटे-मोटे २४ प्रकार बताये गये हैं जिनके अंशुमान् मुञ्जवान् चन्द्रमा रजतप्रभ दूर्वा सोम श्वेताक्ष आदि हैं। इनसे भिन्न १८ अन्य औषधियों के नाम गिनकर कहा गया है कि—"तासां सोमवत् क्रिया—आशीः—स्तुतयः शास्त्रेऽभिहिताः' (३०।५)।

समुद्र मन्थन की प्रक्रिया से सोम या अमृत की प्राप्ति का उद्योग भी सोम सृष्टि के व्यापक प्रयत्नों का सूचक है। आयुर्वेद में वर्णित सिद्धान्त ही जनसाधारण की जानकारी के लिए पुराण आदि वाङ्मय में लिये गये हैं। महाभारत परिशिष्ट हरिवंश के हरिवंश पर्व में—

मनः प्रजापति र्ज्ञेयः कफः सोमो विभाव्यते।
पित्तमग्निः स्मृतं ह्येतद् अग्नीषोमात्मकं जगत् ।। ४०-५४

के रूप में कफ-आप्यअंश—को सोम तथा अग्नि—आग्नेय भागों—को पित्त बताकर व्यष्टि में भी अग्नि सोम का अस्तित्व बताकर अग्निसोमात्मक जगत् की व्याख्या की गई है। वायु पु. ९७. ४४.५६ में भी यही विषय है।

उपर्युक्त विवेचन से एक बात और प्रकट होती है कि अन्न और अन्नाद की युक्ति में यज्ञ प्रक्रिया से केवल अन्नाद मात्र शेष रह जाता है। अग्नि और सोम में

आहुत सोम वैसे ही अग्नि रूप ले लेता है जिस प्रकार दीपक में निहित तैल अर्चि—ज्वाला—के रूप में होता जाता है तथा उस रूप से सोम-स्नेह की जो अन्न है, आहुति लेता रहता है। शरीर-अन्नाद-भी सोम रूप विविध खान पान मय अन्न की आहुति लेता है, यह अन्न सप्त धातु रूप चिति के रूप में शरीर बनता हुआ अन्नाद होता जाता है और पुनः अन्न की आहुति लेता रहता है, इस प्रकार सृष्टि में सर्वत्र अन्नाद का ही प्रामुख्य देखने में आता है। आत्मसात् वही होगा जो अन्नाद के ही साजात्य भाव का रूप रखता है, इस प्रकार दोनों मूलतः एक ही हैं और समस्त सृष्टि अन्ततोगत्वा एक मूल में ही पर्यवसित होती है। यह वेद विज्ञान का निचोड़ है जो आधुनिक विज्ञान से वैचारिक दृष्टि से दूर नहीं है।

इसके साथ जब आधुनिक विज्ञान की तुलना करते हैं तो एक बात स्पष्ट रूप में उभर कर आती है कि आधुनिक विज्ञान में सृष्टि के मूल में किसी चेतन सत्ता को स्वीकृति नहीं है। अग्नि और सोम जैसे जड़ पदार्थों का याज्ञिक अयाज्ञिक मेल ही सृष्टि है यह आधुनिक विज्ञान की मान्यता है जो प्रकृति से ऊपर नहीं उठ पाती है।

भारत में भी वेद को नकार कर विश्व मीमांसा में प्रवृत्त तर्क प्रधान दर्शनों की भी गति प्रकृति तक ही है। यह स्वाभाविक भी है, अचिन्त्य भाव सदैव तर्कातीत होते हैं और अचिन्त्य वही है जो प्रकृति से परे है। इसी दृष्टि से महाभारत भीष्म पर्व में कहा गया है:—

अचिन्त्याः खलु ये भावा नस्ताँस्तर्केण साधयेत्।
प्रकृतिभ्यः परं यन्तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम्।। ५।१२

वायु पुराण ३४।८ में भी यह पद्य पठित है। यह सर्वथा उपयुक्त है प्राकृत दृष्टि का विस्तार ही विज्ञान है, ज्ञान के आगम का स्रोत दिव्य दृष्टि है। वह दिव्य दृष्टि वेद है, यही इसका ईश्वरीय ज्ञानत्व है।

केवल वेद के स्वाध्याय से भी अचिन्त्य स्वरूप ईश्वर तक गति नहीं हो हो सकती है जब तक दिव्य दृष्टि को संस्कारित करने वाले योग्य आचार्य की शरणागति न हो। यज्ञ याज्ञादि प्रधान विज्ञान के संस्कारों की प्रबलता बुद्धि को अपर ब्रह्म के प्रसार में इस रूप से आबद्ध रखती है कि पर ब्रह्म को ओर उन्मुख रहने की वृत्ति ही बुद्धि में नहीं आ पाती है। प्राचीन भारत में ऐसे लोगों का प्राबल्य रहा है तथा इन लोगों ने सृष्टि विषयक अनेक वादाभासों को जन्म दिया है।

इस दृष्टि की व्याप्ति को रोकने का भगवान् बादरायण का यत्न 'ब्रह्मसूत्र' है जो वेदान्त दर्शन का एक मात्र आर्ष मूर्धन्य ग्रन्थ है। इसमें अग्नि सोम जैसे समस्त नामों की प्रवृत्ति पर ब्रह्म में बताई गई है।

इस विषय में भगवान् यास्क ने पदों के निर्वचन तीन प्रधान स्कन्धों—नैघण्टुमकाण्ड, नैगमकाण्ड और दैवतकाण्ड—में करते हुए पदव्याख्या सरणि प्रस्तुत की है तथा विज्ञान का अतिश्रेष्ठ पक्ष प्रस्तुत किया है। दोनों पूर्वकाण्डों की अपेक्षा देवत काण्ड का प्राधान्य भी उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है, यही निरुक्त का प्रयोजन एवं कार्य भी है किन्तु यह सब कुछ जिसके लिए है उस परम प्रयोजन को निरुक्त परिशिष्ट में बताया है। परिशिष्ट का प्रथम अध्याय (निरुक्त का तेरहवाँ अध्याय, निघण्टु सहित निरुक्त का अठारहवाँ अध्याय) अतिस्तुति विषयक है।

गुणगुणी के सम्बन्ध का प्रदर्शन स्तुति है। विज्ञान दृष्टि से देवों के कर्मों से गुणों का निर्धारण कर 'इन इन गुणों से विशिष्ट इन इन कर्मों वाले आप हैं' इस प्रकार स्तुति की जा सकती है। एक वह स्थिति है जिसमें सभी गुण सभी कर्म एक व्यक्तित्व में समाविष्ट हों, भिन्न-भिन्न रूप से प्रतीयमान से भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के गुण कर्म एक में भी देखे जाते हों ऐसी स्थिति में तद् व्यक्ति विषयक कथन अतिस्तुति है। यह अतिस्तुति किसी भी नाम से हो परमात्मा की है यही अतिस्तुति अध्याय का विषय है।

अतिस्तुति से आत्मा परमात्मा अथवा ईश्वर तक गति पाकर वेद साधक ऊर्ध्व मार्गगति के लिये सिद्ध हो सकता है इस दृष्टि से यास्क परिशिष्ट का द्वितीय अध्याय पढते हैं। इस अध्याय में महर्षि यास्क ने पूर्व में—निघण्टु तथा द्वादशाध्यायात्मक निरुक्त में—पठित नामों में से ९४ नाम महान् आत्मा के पढे हैं जिनमें हंस धर्म यज्ञ सोम आपः कम् अन्नम् आदि हैं।

ये नाम गिना कर यास्क कहते हैं—अथ एतम् महान्तम् आत्मानम् एतानि सूक्तानि एता ऋचः अनुप्रवदन्ति (१४.११)—अर्थात् इस महान् आत्मा को ये सूक्त जो ऋग्वेदादि में पढ़े गये हैं तथा ये ऋचाएँ—जो मैं निदर्शन रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ—वर्णित कर रही हैं।

इस अवतरिका के साथ यास्क सबसे प्रथम सोम सम्बन्धी ऋचाओं को ही उद्धृत करते हैं। ये छह मन्त्र हैं—

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः।
जनिताग्ने र्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः॥

—ऋ. ९.९६.९

इस मन्त्र में सोम को मतियों का द्युलोक का पृथिवी का अग्नि का सूर्य का इन्द्र का और विष्णु का उत्पादक बताया गया है। भगवान् यास्क ने इस मन्त्र के और इस सन्दर्भ में उद्धृत सभी मन्त्रों के दो दो अर्थ किये हैं। प्रथम अर्थ विज्ञान की भाषा में देवता के कर्मों को बताता है तथा द्वितीय अर्थ आत्मा की विभूति को बता रहा है यह ज्ञान की भाषा है।

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीना मृषि विप्राणां महिषो मृगाणाम्।
श्येनो गृध्राणां स्वधिति र्वनानां सोमः पवित्रमभ्येति रेभन्॥

—ऋ. ९.९६.६

विज्ञान में सोम की विभूति का रूप है यह देवों में ब्रह्मा कवियों में पदवी विप्रों में ऋषि मृगों में महिष गृध्रों में श्येन और वनों का स्वधिति है। आधिदैविक दृष्टि से ये कुछ तत्त्व तथा उन तत्त्वों में वरिष्ठतत्त्व हैं। अध्यात्म में यह मन्त्र परमात्म विभूति अथवा यास्क के शब्दों में आत्मगति को बता रहा है।

निम्नलिखित चार मन्त्र नवम मण्डल के ही ९७वें सूक्त के ३४.३५, ४०.४१ वें क्रम के हैं—

तिस्रो वाच ईरयति प्रवह्नि ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छ मानाः सोमं यन्ति मतयो वावशाना॥ ३४

सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः।
सोमः सुतः पूयते अज्यमानः सोमे अर्का स्त्रिष्टुभः सं नवन्ते॥ ३५

अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन् प्रजा भुवनस्य राजा।
वृषा पवित्रे अधिसानो अव्यै बृहत्सोमो वावृधे सुवाम इन्दु॥ ४०

महत् तत्सोमो महिषश्चकारापां यद् गर्भो अवृणीत देवान्।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजो अजनयत् सूर्ये ज्योति रिन्दुः॥ ४१

ऐसे उद्धरण और भी हैं न सब का उल्लेख यहाँ उचित है न सभी के दोनों प्रकार के अर्थ ही स्थानाभाव से दिये जा सकते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि सोम का प्रकृति रूप तथा ईश्वर रूप दोनों ही महा प्रति यास्क को अभीष्ट हैं। यहाँ बलाबल विचार कर किसी एक अर्थ को महत्त्व की दृष्टि से न्यून या अधिक नहीं कहा जा सकता है।

भगवान् यास्क के इस सन्दर्भ से यह भी स्पष्ट है कि सोम को केवल जड़ वस्तु मानना अथवा चैतन्य विशिष्ट गुणों के आधार पर केवल ईश्वर तक सीमित मान लेना एकांगी दृष्टि है। इस दृष्टि की यजुर्वेद स्पष्टतः निन्दा करता है वह

विद्या अविद्या की सम्भूय उपासना पर बल देता है तथा उसके लाभ बताता है जो ज्ञान विज्ञान हैं।

निरुक्त के इस सिद्धान्त को 'कारण गुणाः कार्यगुणान् आरभन्ते' के प्रकाश में भी देखा जा सकता है। सबका मूल परमात्मा है अतः सृष्टि में सर्वत्र परमात्मा अपनी विभिन्न प्रजाओं में ओत प्रोत है। 'ओतश्च प्रोतश्च विभुः प्रजासु' तथा 'तस्माद् वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः' जैसे आर्षवचन उसकी सर्वत्र व्याप्ति को बता रहे हैं अन्तर्यामी रूप से वह अन्तःस्थित होकर भी यमन करता है ऐसी स्थिति में सोम के गुण परमात्मा के गुण हैं। सोम जितना अधिक स्थूल रूप लेता जाता है उतना ही उन गुणों के आच्छन्न होने से परमात्मत्व से दूर सा लगता है। प्राकृत आवरण जितना गिरता जायेगा उतना ही परमात्म रूप प्रकाशित होता जायेगा। वेद का यह सिद्धान्त है।

वेद के इस सिद्धान्त को सम्पूर्ण भारत भारती के मन बुद्धि में दृढ संस्कार के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए नाम स्तोत्रों की सृष्टि की गई। द्वादशनाम अष्टोत्तर शतनाम तथा सहस्रनाम स्तोत्रों में अध्येता की दृढभावना रहती है कि ये सभी भगवान् के नाम हैं।

महाभारत अनुशासन पर्व में 'विष्णु सहस्रनाम स्तोत्र' है भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर को इसका उपदेश दिया था। भारत के लाखों नर नारी प्रतिदिन नियमित रूप से इसका आज भी जप करते हैं। इसमें—

सोमपोऽमृतपः सोमः पुरुजित् पुरुसत्तमः। ६७
यज्ञान्तकृद् यज्ञगुह्यम्, अन्नम् अन्नाद एव च। ११८

सोम और सोमप, अन्न और अन्नाद भगवान् के प्रत्यक्ष नामों में पढ़े गये हैं। परमात्मा ही सोम है वही सोमप (सोम रक्षक, सोमपान कर्ता) है, वही अन्न है अन्नाद है। ये भोग्य भोक्ता के अद्वैत को बताने वाले नाम हैं।

इस दृष्टि को अपना कर ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में भगवान् के १०८ नाम उपलक्षण रूप में दिये हैं तथा इनमें अन्न और अन्नाद नाम भी लिये हैं। सोम का पर्यायवाचक चन्द्र नाम लिया है। अन्न और अन्नाद का भगवद्वाचक रूप में निम्नलिखित मन्त्रों में प्रयोग है—

अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम।
यो मा ददाति स इद् एवमावदन्नमन्नमदन्तमद्मि॥ सामवेद ५९४

अन्न, अन्नाद, तथा अन्नादों का अन्नाद, ये तीन नाम परमात्मा के हैं जो अहम् शब्द से सम्बद्ध है। नीचे अथर्ववेद के मन्त्र में परमात्मा को अन्नाद और अन्नपति कहा गया है—

यो अन्नादो अन्नपति र्बभूव ब्रह्मणस्पति रुतयः ।
भूतो भविष्यद् भुवनस्य यस्पतिः ।। १३.३.७

परमात्मा सोम है यही प्राकृत सोम होकर विविध सौम्य भावों के विभूति रूप से विश्व में व्याप्त है जैसा कि गीता में कहा गया है—

पुष्णामि चोषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः । १५.१३

रसात्मा मैं सोम होकर सभी औषधियों का पोषण करता हूँ ।

इस प्रकार परमात्मा से लेकर तृणजाति पर्यन्त विविध अर्थों में सोम शब्द का प्रयोग प्राचीनों को अभिमत है अतः परमेश्वरार्थक तथा उससे भिन्नार्थक सोम पदग्रथित सभी मन्त्र समान रूप से अध्यात्म अधिदेव अधिभूत अधियज्ञ अधिलोक एवम् अधिव्यष्टि अर्थ देते हैं । महर्षि दयानन्द सरस्वती के इस प्रकार के अर्थों के विषय में ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में दिया गया प्रतिज्ञा वाक्य सदैव स्मरणीय है—

अथ अत्र यस्य मन्त्रस्य पारमार्थिक व्यावहारिकयोः द्वयोः अर्थयोः श्लेषालंकारादिना स प्रमाणः सम्भवः अस्ति तस्य तस्य द्वौ अर्थौ विधास्येते । परन्तु नैव ईश्वरस्य एकास्मिन्नपि मन्त्रार्थे अत्यन्तं त्यागः भवति । (प्रतिज्ञा विषयः)

इसका अर्थ स्पष्ट है—श्लेष आदि अलंकारों से प्रमाण पुरस्सर जिस मन्त्र के पारमार्थिक और व्यावहारिक रूप दोनों अर्थ सम्भव हैं उस प्रत्येक मन्त्र के दोनों अर्थ इस भाष्य में किये जायेंगे । परन्तु (यह स्मरणीय है कि जहाँ दो या अधिक अर्थ न हों, अथवा एकाधिक अर्थ हो और सीधा ईश्वर सम्बद्ध न हो तो उसका यह अभिप्राय नहीं है कि वहाँ ईश्वरार्थ है ही नहीं) एक भी मन्त्र ऐसा नहीं है कि उसमें ईश्वरार्थ का त्याग होता हो अर्थात् प्रत्येक मन्त्र का विषय अनिवार्य रूप में ईश्वर तो है ही ।

गोदावरी आर्य कन्या शिक्षण समिति, ब्यावर

"सोम का वैदिक स्वरूप-सामवेद के सन्दर्भ में"

—आचार्य रत्नलाल पालड़िया

'सोम' पद वेद के १२० सूक्तों में सम्बोधित हुआ है, जिनमें लगभग सभी मण्डल ९ में हैं आधा दर्जन के लगभग अन्य में हैं। सामवेद पूर्वार्चिक में पावमान काण्ड सम्पूर्ण सोम का ही वर्णन करता है अन्यत्र सोम ओषधि है। जो साक्षात् अलभ्य होने से गौणरूप से वह भी मध्यस्थानक मान ली गई है इसीलिए वह भी पृथिवीस्थान में नहीं पढ़ी गई है। सोम की व्युत्पत्ति—षुञ् अभिषवे (स्वा०)+मन् (उणादि १।१४०) कर्मणि औषधिवाचकत्वे। अथवा षुञ् अभिषवे (स्वा०) षू प्रेरणे (तुदा०) षु प्रसवैश्वर्ययोः (भ्वा०) धातोर्वा अर्त्तिस्तु सुहसृ उणा. २।१४० सूत्रेण मन्। सोमः। ओषधिः सुनोतेर्यदेनमभिषुण्वन्ति। (निरु. ११२)। मध्यस्थानी रूप में सोम का उदा० 'दिवि सोमो अधिश्रितः (ऋ० १०-८-५१)। ओषधिरूप का उदा. पावमानी ऋचाओं में 'स्वादिष्ठया मदिष्ठया.' साम ४६८, ६८९ में मिल सकता है। सोमं मन्यते पपिवान्० इति (ऋ. १०-८५-३) में एवं यत्त्वा देव प्रपिबन्ति० इति (ऋ. १०-८५-५) में सोम का अर्थ चन्द्रमा (मध्यस्थानी) तथा ओषधि (अमध्य-स्थानी) दोनों हो सकते हैं। 'तिस्रो वाच ईरयति. इति (साम ५२५,८२९) में सोम (१) सूर्य और (२) आत्मा के अर्थ में निरुक्त अ. १३ (१४) खंड २९ (१६) व्याख्यात है। पावमानी ऋचाएं सारी सोम देवता की हैं और वहाँ सोम पद नैघण्टुक मध्यस्थान परक है। यहाँ यह भी लिखा जा सकता है कि सोम का अर्थ शब्द की अभिधा, और लक्षणा व्यञ्जना शक्ति के आधार पर अन्य भी कई अर्थ 'सोम' शब्द के निष्पन्न हो सकते हैं। निरुक्त १३ (३३) खंड ३४ (४६) में जातवेदसे सुनवाम. इति (ऋ. १।९९।१) में आया सोम का अर्थ राजा किया गया है, निरुक्त ९।३६ आ वामुपस्थम् सोमपीतये. (ऋ. २।४१।२१) में 'सोम' सोमरस, निरुक्त अ ६ खण्ड १० में सोमानां स्वरणं. (साम, १३९, १४६३) सोमानं= सोतारम्। सौम्य गुणानां त्वद्दर्शन योग्यानां गुणानां निष्पादयितारम् किये गए हैं। इसी प्रकार निरुक्त अ. ९-८ में सोमिनः—(१) ज्ञानरसवन्तः—(२) ज्ञानरसस्याधि-कारिणः (विद्वत् पक्षे) सोमवन्तः=सोम्यनलवन्तः, सोम्य जलाधिकारिणः (मेघपक्षे) सोमवन्तः=सोमं पिष्ट्वा पानाय दत्ता सोमपेषण (पाषाणपक्षे) प्रेते वदन्तु प्र वयं.··· सोमिनः' मन्त्र पर दिखाये गए हैं। फिर निरुक्त १०।३७ में साम २५६, १५७३ में पठित मंत्र अभित्वा.····सोम्यं मधु' में प्रयुक्त सोम्यं शब्द 'सोमपानमिव' किया है।

और निरुक्त २।५ 'रमध्वं मे वचसे सोम्याय'····(ऋ. ३।३३।५) में प्रयुक्त सोम्याय का अर्थ 'सोम सम्पादन निमित्त भूताय पृथिव्यामोषधिनतवनस्पतीनां सम्पादने हेतुभूताय' देखने में आता है।

सोम सामान्यतः सोमवृक्ष, सोमलता या सोमलतारस अथवा चन्द्रमा या सूर्यकिरणें जो वनस्पतियां हैं या उनको बढ़ाने वाले हैं उनके लिए प्रयुक्त हुआ है। अतः पहले इस मुख्यार्थ पर ही विचार करते हैं।

डारमेस्टेंटर के अनुसार सोम या होम के अन्तर्गत समस्त प्रकार की जीवन शक्ति का समावेश हो जाता है। इस समस्त वनस्पति की जीवन शक्ति को ही वे सोम कहते हैं। यह सत्य भी है। वनस्पति की जीवनी शक्ति चन्द्रमा के अधीन है। उसका नाम सोम है। वह औषधिराज है। १५ दिन तक उसमें एक-एक पत्ता बढता पुनः १५ दिन तक एक-एक पत्ता घटता है। ऋग्वेद १।२३।२० में भी सोम को समस्त औषधियों में व्याप्त बतलाया है।

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजी॥

ऐतरेय ब्राह्मण में 'एतद्वै देवसोमं यच्चन्द्रमाः' (७-११-८) देवताओं का सोम ही चन्द्रमा है। इस सोम को गरुड़ और श्येन=दो प्रकार की सूर्य की किरणें स्वर्ग से लाते हैं। वेदों में एक आकाशीय संसार भी है। पृथिवीस्थ सभी पदार्थ वहाँ आकाशीय संसार में हैं। उन्हीं पदार्थों के नामों से ही पृथ्वी के पदार्थों का नामकरण हुआ है। 'इन्द्रवृत्र' और 'मौजवत्' नाम भी वैसे ही हैं। आकाश में जहाँ सोम रहता है उसका नाम 'मौजवत्' है।

सुश्रुत के वर्णन और वेद में वर्णित सोम के वर्णन में समानता है किन्तु सुश्रुत में वर्णित पत्ती को ही सोम कहते हैं और क्या इसे कोई दिखा सकता है?

डाक्टर पावगी द्वारा बताई सोमलता पृथिवीस्थ कोई वस्तु नहीं है। प्रो, मोक्समूलर लिखते हैं कि सूत्रों और ब्राह्मणों ने भी माना है कि सोमलता का मिलना कठिन है।

न तान्पश्यन्ति धर्मिष्ठाः कृतघ्नाश्चापि मानवाः।
भेषजद्वेषिणश्चापि ब्राह्मणद्वेषिणस्तथा॥ —(सुश्रुत २९)

सुश्रुत में सोम मुञ्जवान का पर्याय बताया है। वह पृथ्वी के वृक्षों की जान है। वह देवताओं को वृक्षों की तरह छाया, हरियाली आदि वनीय तथा सौम्य पदार्थों से तृप्त करता है। इन्द्र के नन्दन वन का यही देवतरु है। जिस तरह यह आकाश का वृक्ष है उसी तरह पृथ्वी की वनस्पति का पोषक है। उसमें सौम्यभाव लानेवाला औषधिराज है और वह वनस्पतिमात्र का स्वामी है। वह पहले पृथ्वी

पर नहीं था परन्तु याज्ञिक काल में सोमरस के नाम से किसी नशीली चीज का उपयोग होने लगा। (सुश्रुत चिकित्सा स्थान २९)

A A Macdonnell ने अपनी पुस्तक वैदिक रीडर में सोम के विषय में लिखा है कि सोमरस 'मधु' अथवा इन्दु भी कहलाता है। वह नशीला, बभ्रु, अरुण और हरित् रंग का होता है। यह सोम देवता को चढ़ाया जाता है। सोम का तना पत्थर पर पीसकर, छान कर बर्तनों में भरा जाता है और पवित्र बर्हि पर डालकर देवता को भेंट किया जाता है। यही संस्कृत किया सोमरस शुद्ध, शुक्र शुचि वायु या इन्द्र को भेंट होता है। छने सोम में पानी या दुग्ध को भी मिलाते हैं। इसमें दूध, दधि और यव का मिश्रण करना भी बताया जाता है। सोम तीन बार निकाला जाता है। जो सर्वप्रथम प्रातः सोम को मध्याह्न इन्द्र को और सायं ऋभु को दिया जाता है।

सोम का जल से संबंध मिलता है। यह पानी में उगता है। इसे जल का स्वामी और जल वर्षक बताते हैं। वह वृषभ की भांति रंभाता है। पीत रंग की उसकी चमक को सूर्य के साथ जोड़ते हैं।

यह दिव्य पेय है जिसे पीकर मनुष्य अमरता पाते हैं। यह अमृत है। इससे औषधि के रूप में अमर ज्योति आती है। रोग दूर होते हैं और पंगुता नष्ट होती है वह वाणी का देवता भी कहलाता है। सोम के नशे के प्रभाव से विजय प्राप्त होती है। ऋ. ८-४८-३ में सोम अमरशक्ति प्रदान करता है। एवं ऋ. ७-८६-६ के अनुसार सोम क्रोध और पाप को भगाता है। सोम (सुमद) अच्छा और आनन्ददायक है जब कि सुरा (शराब) दुर्मद (बुरी, नशीली) होती है। ऋ. ८-२-१२ में इसे अमृत, दुग्ध और मधु लिखा है।

Inside the Vedas नामक पुस्तक में श्री पन्नालाल परिहार ने लिखा है कि 'सोम' एक ऐसा विवादित पद है जिस पर विभिन्न दृष्टिकोण हैं जो रहस्यमय हैं। उनके अनुसार—(१) डा. ए. बी. कीथ और ज्यूलियस एण्डिंलग ने उसे शराब बताया है। (२) रेगोजीन ने इसे देवी सुरासव कहा। (३) श्री व्हाट ने इसे अंगूरों के रस तुल्य समझा है। (४) श्री राइस ने इसे गन्ने का रस और (५) श्री मोक्षमूलर ने इसे आंवले का रस (६) श्री हिलेब्रांट ने इसे मधु कहा है। (७) मैडेम ब्लेवाट्स्काई ने इसे बाइबल में आई बुद्धि के वृक्ष के समान कोई पदार्थ बताया है। (८) पं. दुर्गादास लहरी सोम की लता को बुद्धि बताते हैं और सोमरस ही बुद्धि होती है। (९) कुछ लोग इसे शिलाजीत और कुछ ब्राह्मी जड़ी मानते थे। कुछ इसे चाय की पत्ती की तरह बताते हैं।

सोमलता/सोम के अनेक नाम अंशुमान्, मुञ्जवान्, चन्द्रमा, रजतप्रभ, आदि सुश्रुत में आए हैं और उनका गुण भी समान ही लिखा है।

सुश्रुत में इसका उत्पत्तिस्थान मूजवान पर्वत ही बताया है। ऋग्वेद में भी सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो (१०-३४-१) तथा निरुक्त में मूजवान् पर्वतो पाठ है। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष में इसके उत्पत्तिस्थान हिमालय, आबू, सह्याद्रि, महेन्द्राचल श्रीशैल, देवगिरी, पंजाब और सिंध भी आए हैं। ए. ए. मैक्डोनेल के मत से सोम पर्वतों पर उगता है और उसका वास्तविक उद्गमस्थान तो आकाश ही है जहाँ वह रहता है. वह स्वर्ग का अधिपति है वह सब वनस्पतियों का पति है और सब पौधों का पति है और सब औषधियों को उत्पन्न करता है। कुछ मंत्रों में वह चन्द्रमा गाया गया है। सामान्यतः सोम एक पौधा या औषध है जो हिमालय या तिब्बत में मानसरोवर झील और कैलाश में उगता है या मुञ्जवान पर्वत (हिन्दुकुश) पर उगता है। जिन्दावस्ता में पारसी लोग सोम को हव्म कहते हैं।

चन्द्रमा का संबंध सोम से ही घनिष्ठ है। इसी कारण सोम का नाम भी चन्द्रमा है। स्वामी दयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में बताया है कि चन्द्रमा में प्राणियों का निवास न होने पर भी वह पृथिवी लोक के प्राणियों को जीवननिर्वाह करने में सहायक है। चन्द्रमा के कारण ही औषधि वनस्पति आदि में रस उत्पन्न होता है और इस प्रकार वह अन्न, फल आदि प्रदान करके प्राणियों को बसाता है [वेदविषय विचारः]। (२) रात्रि में सूर्य की किरणें चन्द्रमा से टकराकर पृथिवी की ओर परावर्त्तित होकर अर्थात् उलट कर आती हैं और उनकी गरमी काफी कम हो जाती है इसलिए रात्रि में चन्द्रमा का प्रकाश शीतल होता है। इसी शीतल प्रकाश और वायु से बहुत सी औषधियां भी पुष्ट होती हैं।

कुछ विदेशी यूरोपीय विद्वानों के अनुसार सोम कोई मादक पेयवत् है। यही विचार भारतीयों में भी घर कर गए हैं। 'वैदिक एज' के पृ. ३१३ पर लिखा है 'सुरा' सोम की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय मादक पेय था। अन्यत्र उसी पुस्तक में लिखा है कि सुरा (शराब) ऋग्वेद—काल में जानी जा चुकी थी और अथर्ववेद में इसका वर्णन है। यह धारणा उपरिवर्णित सोम के गुणों से और आगे वाले वर्णनों से पूर्णतः मिथ्या और भ्रमित सिद्ध होगी।

वेदानुसार सोम के स्वरूप या स्वभाव पर और ध्यान दें। ऋ. वे. ९-९७-३६ कहता है कि सोम बुद्धिवर्धक है। इससे पाप नष्ट होता है। यह आध्यात्मिक उच्चकोटि का आनन्द है। ऋग्वेद १-९१-२२ में सोम का वर्णन शक्ति प्रदाता औषधि के रूप में किया गया है। ऋग्वेद (१०-५६) में ७ सिद्धान्त निर्धारित हैं जो सम्यक् जीवन के गुण हैं और उन गुणों में शराब का त्याग भी है। ऋ. ८-२-१२

में लोगों को उस पेय का त्याग करने का आदेश देता है जो दुर्मद या बेहोश करता है। ऋ. ७-८७-६ शराबपान को लताड़ता है क्योंकि यह उपद्रव को जन्म देता है और मनुष्य को पथभ्रष्ट करता और कुमार्ग की ओर प्रेरित करता है। अथ. ६-७०-१ कहता है कि मांस, शराब और जुआ सभी कुव्यसन हैं। ऋ. ८-२-१२ में बताया गया है कि शराबी लड़ाई झगड़ा करते हैं, नंगे हो जाते हैं, अश्लील बकवास और मूर्खतापूर्ण आचरण करते हैं। ऐसे लोग बुद्धिहीन और शरारती होते हैं। ऋग्वेद ९-५१-२ सोम को अमृत बताता है और अथ. ५-२४-७ औषधराज। ऋ. (१-९१) में 'सोम' गौ, अश्व, वीर, और यशस्वी पुत्र का दाता तथा यज्ञ, भोजन और शक्ति का सार है। ऋ. (८-४८-३) कहता है कि 'सोम' मनुष्य को अमर बना देता है और उसे प्रकाश और आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान करता है। अथर्व. ३-२७-४ तो सोम को उत्तर का राजा कहता है। सोमरक्षोहा या कीट नाशक वर्णित हुआ है।

सामवेद के सन्दर्भ में अब 'सोम' का स्वरूप या इसका वैदिक स्वरूप सप्रमाण हृदयग्राही निष्पन्न किया जा रहा है:—

मंत्र संख्या	सोम के गुण—
५७३	पवित्र कारक एवं शुभकर्म का प्रेरक है।
५२७	शुद्ध, बुद्धि उत्पादक है। आत्मा का प्रकाशक और कर्मों का उन्नायक है।
४९२	पापविनाशक और पवित्रकारक है। पापमार्ग से रक्षक और सुपथ का प्रेरक है।
५०४	कर्त्तव्य और धर्म का चमकीला स्रोत तथा अधिकारों का रक्षक है।
५२१	समुद्र के समान है। धर्म के प्रथम-चरण पर देवों का आनन्दस्रोत है।
५२७	शुद्धबुद्धि प्रदाता है।
५३०-५५५	सोम बुद्धि का उत्पादक, वर्द्धक, वर्षक एवं सर्वकामधुक् है। उसके हाथों में जीवन का ऐश्वर्य निहित है।
५७१	देवों के भोजन में पवित्रता लाता है।

सामवेद में मुख्यतः उपासना विषय है। अतः उस संदर्भ में सोम का अर्थ परमात्मा, भक्ति, उपासक ही निकालना चाहिए। अन्यत्र सोमलता, सोमरस, पौधा होगा किन्तु सामवेद के मन्त्रों में वह अर्थ भी अध्यात्म परक ही लगाना होगा। सोम या तद्धित पद जब भी सामवेद में आएंगे तो वे आध्यात्मिक अर्थ का बोध-कर्ता होंगे और जब वे यजुर्वेद के मन्त्रों में आएंगे तो वहां वे यज्ञपरक स्थान ग्रहण कर लेंगे।

इन्ही प्रसङ्गों में आए सामवेद के मंत्रों में प्रयुक्त सोम शब्द को पहले समन्त्र कुछ उदाहरण देकर अर्थ दिया जा रहा है और फिर एक ही अर्थ के द्योतक सामवेद के मन्त्रों की सूचक उनकी संख्या मात्र लिखकर परमात्मा भक्ति, उपासना रस, उपासक, विद्वान् आदि शब्द दिये जायेंगे । रसास्वादन कीजिए—

अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासाति । सा. २०८ ।। (आनन्द)
स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । सा. ४६८ (भक्तिरस)
इन्द्राय पातवे सुतः ।। ६८९ (प्रेमरस)
आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते । सा. ५३३ (ऐश्वर्यशाली राजा)
सनादक्षमुत क्रतुमय सोम मृधो जहि ।
अथा नो वस्य सस्कृधि ।। सा. १०४९ (प्रभो !)
सोमः पूषा च चेततुर्विश्वासां सुक्षितीनाम् । (ब्रह्म के प्रति प्रेम और श्रद्धा)
देवत्रा रथ्योर्हिता । साम १५४ ।। —स्वामी विद्यानन्द विदेह
क इमं नाडुषीष्वा इन्द्रं सोमस्य तर्पयात् । (परमात्मा का स्तुतिगान, स्तुति प्रार्थनोपासना)
स नो वसून्या भरात् ।। साम. १९० ।।
इम इन्द्र मदाय ते सोमाश्चिकित्र उक्थिनः ।
मधोः पयान उपनोगिरः श्रृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वणः ।। साम २९४
(स्तुत्य, स्तुतियोग्य सोम)
इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः । तेषां मत्स्व प्रभूवसोः ।।
(हृदयस्थ प्रीति) (साम. २१२ ।।)
—स्वा. विद्यानन्द विदेह ।

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णुः ।।
(साम. ५२७, ९४३ ।।)
(सत्यकर्मों में प्रेरक, शान्तस्वरूप अन्तर्यामी परमात्मा)
सोम राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे ।
आदित्यं विष्णुꣳसूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ।। (साम ९१)
(शान्तस्वरूप, शान्तिदायक, सारे जगत् का उत्पादक)
रामः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यंꣳसोमविश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणः ।। साम ८७१ ।।
(परमात्मन्)
त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजयन्स्त्वङ्गः ।
त्वमातनोरुर्वान्तिरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ।।
(हे परमात्मन्) (साम ६०४)
सामवेद शतकम् —स्वामी अच्युदानन्द ।

सोम = परमात्मा—आनन्द-हर्षवर्षक, आध्यानीय—

साम. ४६७, ४६८, ४६९, ४७०, ४७१, उपासनीय। पृथिवीस्थ मनुष्य को अन्न-सुख-यश-प्रदाता। जीवात्मा का कष्टहर्ता एवं शांतिदाता।

४७०—पापवृत्तियों का नाशक, देवों का रक्षक।

४७१—अ, उ, म् से उच्चरित परमात्मा मधुर ध्वनि करता उपासक के भीतर आता है और शुभकर्म की प्रेरणा और अशुभ का निषेध कर भक्त को सच्चा भक्त बना देता और उसका कल्याण करता है।

४७२—परम रसीला, कृपाभाव से पूर्ण, अत्यन्त आनन्द से भरपूर है। जितेन्द्रिय और प्राण साधक को अपने गोद में बिठा लेता है।

४७३, ४७५, ४७६—वह आनन्दप्रद प्राणों में प्रगतिप्रद, स्तुति में स्थित उच्च शिखर पर चढ़ाने वाला, भक्त-हृदय में प्रकट होता है।

४७४, ४८०, ४८५—सुखदाता, दु:ख हर्ता।

४७४, ४७६, ४७७, ४७९—आनन्दप्रद, तृप्ति कारक।

४७४, ४८०—पवित्र कारक।

साममन्त्र

४७४—उत्साही, चतुर कुशल बनाता है।

४७५—पेय दिव्य गुणों को धारण करने वाला। रक्षक।

४७५, ४७६, ४८१—प्रेरक।

४७५, ४८४—पवित्र अन्त: करण में झरता है।

४७६—क्रान्तदर्शी, कवि। द्युलोक से पृथिवी लोक में व्याप्त।

४७६, ४८१—सर्वत्र व्यापक।

४७७, ४७८, ४८१, ४८३—शान्त आनंदस्वरूप परमात्मा।

४७७, ४७८, ४८०—मोक्ष प्राप्त कराता है।

४७८—सर्वज्ञ, उन्नत करता है।

४७९—वीर्यवर्द्धक, कामना पूर्ण करने वाला।

४८०—पवमान, आनन्द तेजस्वी प्रकाशमान, आत्मदर्शक

४८१—सृष्टिकर्त्ता, प्रिय

४८२—बलवान्, शुभ्र।

४८३—आयुवर्द्धक

४८५—साक्षात् निष्पन्न किया जाता है।

सोम = उपासक

४७७—विद्वान्, आनन्दप्रवाहक

सोम = भक्तिरस—

४६८, ४६९—आनन्दरस का पान, वेदज्ञान, स्वास्थ्य और नीरोग बनाता है।

४७०, ४७१—पापनाशक। दिव्यगुणों को धारण करता और परमात्मा तक पहुँचाता है।

४७६—प्रिय आयु, सुख-प्राप्ति।

४७६, ४८२, ४८४, ४८६—प्रभुप्राप्ति

४७७, ४८०—आनन्द रस यशप्रदाता

४८२—इन्द्रियों को साधने की इच्छा, बलिष्ठ बनाता, मन—मस्तिष्क पवित्रकरता, हृदय में उपासक पैदा करता, धर्मवीरता दाता।

४८३—आयुवर्द्धक

४८५—महती स्तुति, योगाभ्यास, चन्द्रवत् आह्लादक

४८६—भक्त हृदय-तल पर परमात्मा आश्रित हुआ उसे पुष्ट करता, उसके समस्त शरीर में व्याप रहा है।

सोमरस, सोमलता, सोमपौधा—

४६८, ४६९—आनन्द धारा में परमात्मा का उत्कृष्ट स्वरूप मोक्षधाम में प्राप्य है। जीवनरक्षक, पवित्रकर्त्ता।

४७३—सोम हर्षवृद्धि के लिए सींचा जाता है पर्वत पर उत्पन्न होता, मेघ मंडल में स्थित हुआ अन्तरिक्ष जल में बलिष्ठ होता और बढ़ता है, विद्युत् उसका कारण है और उसी में हवन किया हुआ पुनः विद्युत् द्वारा अपनी जन्मभूमियों में पहुंच जाता है।

४७४—पवित्रकर्त्ता, दुःखहर्त्ता, पेय, गतिशील, क्रियाशील, आनंददाता बलसाधक।

४७७—अन्नदाता, यशदाता।

४७८—ज्ञानी बनाता है, कर्मशील बनाता, मोक्षतक पहुंचाता है।

४७९, ४८०—बलसाधक, आन्ददायक, प्रकाश से दीप्तिमान्।

४८१—मन को बढ़ाने वाला, बुद्धि को जगाने वाला।

४८२—गौ, अश्व, वीर पुत्र की इच्छा यज्ञ में डालने से पूर्ण।

सोम शराब नहीं किन्तु यह और ही अलौकिक नशा है दर्शाने हेतु सोम-रस निष्पादन, सोम पान, सोम पान विधि, सोमपान अधिकार संबंधी कुछ मान्यताएं भी यहां प्रसंगवश लिख देना उचित होगा।

सुश्रुत में लिखा है 'सोममादायाध्वरकल्पेनाहृतमभिसुतमभिहुत च सोमकन्दं सुवर्णसूच्या विदार्य पयो गृह्णीयात्।

अर्थात् यथार्थ सोम लाकर अध्वरकल्प के अनुसार आहुति देकर सोम की जड़ को सुवर्ण की सूची से छेदकर रस निकालकर पीना चाहिए। इस क्रिया से रस पीकर जो प्रवेश करता है उसे अग्नि नहीं जला सकती, उसके भीतर एक सहस्र हस्तीसम बल हो जाता है। वह बहुत सुन्दर और समस्त संसार में रमणयोग्य हो जाता है। यही नहीं वह 'दश वर्ष सहस्राणि नतां धारयते तनुम्' दश हजार वर्ष तक जवान बना रहता है। इसी प्रकार एक साधु नृसिंह स्वामी की दीर्घ चिरायु युवावस्था का वर्णन दैनिक नवज्योति अजमेर १८-९-९४ में प्रकाशित पृष्ठ ५ के लेख में भी संकेत मिलता है।

स्वाध्याय सन्दोह (वेदानन्द तीर्थ रचित) पृ. १५७ में 'इमे सोमास इन्दवः सुतासो अधि बर्हिषि। तां इन्द्र सहसे पिब ।। ऋ.' पर व्याख्यात है। सोम ओषधि जिसके संबंध में चिकित्सा स्थान में लिखा है कि उसके सेवन से कायाकल्प हो जाता है। वृद्ध पुनः युवा हो जाता है। किन्तु 'सोमं यं ब्राह्मणो विदुर्न तस्य अश्नाति कश्चन।' (ऋ १०-८५-२) ।। आपाम सोमममृता आभूम। ऋ. ८-४८-३ ।। न ते अश्नाति पार्थिवः। ऋ. १०-८५-४ ।। पृथिवी वासी मिट्टी में लोट पोट होने वाले [प्राकृतिक विषयों का उपासक] उसका उपभोग नहीं कर सकता। सोम बूटी की भी वेद में चर्चा है—'सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिषन्त्योषधिम् (१०-८५-३)—ओषधि बूटी को कूटते पीटते हैं इसे सोम का पिया मानते हैं। इस मन्त्र में दोनों प्रकार के सोम का आदेश है। बूटी सोम बाहर आसन पर—विशेषकर कुशासन पर बैठकर कूटा पीसा छाना जाता है। आध्यात्मिक सोम ब्राह्मणों के हृदय में छनता है। सोमपान की विधि दोनों ही बड़ी परिश्रम से प्राप्य है। सामान्य जन इसका पान नहीं कर सकते। सुश्रुत में २४ प्रकार की बूटी सोम बताई गई है। इधर जीव की शक्ति २४ प्रकार की है [देखें स. प्र. पृ. ३५७ श. सं.] संसार के सभी पदार्थ सोम हैं। भगवान् कहते हैं हमने इस संसार में सोम तैयार किए हैं जो वास्तव में सुखदायी हैं। 'तां इन्द्र सहसे पिब।' उसको बल के लिए पी।

पं वीरसेन वेदश्रमीजी ने सोम की उत्पत्ति मित्र और वरुण तत्त्वों से मानी है और इसे एक गतिशील तत्त्व अपने ग्रन्थ 'वैदिक सम्पदा' में बताया है और इसका आधार वेद के ही निम्नमंत्र दिए हैं—

साम ९१०, यगु. ७।९—'अयं वा मित्रावरुणा सुतः सोमऽऋतावृधा।' हे मित्र और वरुण! तुम्हारे द्वारा निष्पन्न यह सोम है जो जल की वृद्धि करने वाला है।

यजु. ७।२१—सोमः पवते सोमः पवतेऽस्मै ब्रह्मणेऽस्मै०। चूंकि सुश्रुत चरक और वेद में सोम का स्वरूप, गुण, लक्षण, भेद, स्थान आदि औषधि रूप में समान हैं। उन्हें उद्धृत किए बिना यह लेख अपूर्ण ही रह जाएगा।

"ओषधिविषय" सुश्रुत—

सर्वेषामेव सोमानां पत्राणि दशपञ्च च। तानि शुक्ले च कृष्णे च जायन्ते निपतन्ति च ॥२०॥ एकैकं जायते पत्रं सोमस्याहर—स्वदा। शुक्लस्य पौर्णमास्यां तु भवेत् पञ्चदशच्छदः ॥२१॥ शीर्यते पत्रमैकेकं दिवसे पुनः पुनः। कृष्ण पक्षये चापि लता भवति केवला ॥२२॥

सोमभेदा—अंशुमानाज्यगन्धस्तु कन्दवान् रजत प्रभः। कदल्याकारकन्दस्तु मुञ्जवान् लशुनच्छदः ॥२३॥ चन्द्रमाः कनकाभासो जले चरति सर्वदा। गरुडाहृत नामा च श्वताक्ष श्चापि पाण्डुरौ ॥२४॥ सर्पनिर्मोकसदृशौ तु वृक्षाग्रावलम्बिनौ। तथान्ये मण्डलैश्चित्रश्चित्रिता इव भान्ति ते ॥२५॥ सर्वे तु विज्ञेयाः सोमः पञ्चदशच्छदाः। क्षीरकन्दलतावन्तः पत्रैर्निनाविधैः स्मृताः ॥२६॥

सोमस्यस्थानानि—हिमवत्यर्बुदे सह्ये महेन्द्रे मलये तथा। श्रीपर्वते देवगिरौ देवसहे तथा ॥२७॥ परियात्रे च विन्ध्ये च देवसुन्दे ह्रदे तथा। उत्तरेण वितस्तायाः प्रबुद्धाः ये महीधराः ॥२८॥ पञ्च तेषां अधोमध्ये सिन्धुनामा महानदः। हठवत् प्लवते तत्र चन्द्रमाः सोम सत्तमः ॥२९॥ तस्योद्देशेषु चाप्यस्ति मुञ्जवानं शुभानपि। काश्मीरेषु सरो दिव्यं नान्मा क्षुद्रकमानसम् गायत्र्यैष्टुभः पाङ्क्तो जागतः शाक्वरस्तथा। अत्र सन्त्यपरेऽपि सोमाः सोम सभप्रभाः ॥३०॥

(सुश्रुत चिकित्सा अ. २९।२०-३१॥)

नामानि—

अंशुमान् मुञ्जवांश्चैव चन्द्रमा रजतप्रभः। दुर्वा सोमः कनीयांश्च श्वेताश्वः कनकप्रभः ॥५॥ प्रतानवांस्तालवृन्तः करवीरोंशवानपि। स्वयंप्रभो महासोमो यश्चापि गरुडाहृतः ॥६॥ गायत्रस्त्रैष्टुभः पाङ्क्तो जागतः शाक्वरस्तथा। अग्निष्टोमो रैवतश्च यथोक्त इति संज्ञितः। गायत्र्या त्रिपदा युक्तो यश्चोडुपतिरुच्यते। एते सोमाः समाख्याताः वेदोक्तैर्नामभिः शुभैः॥

[चरके चिकित्सास्थाने]

सोमो नामौषधिराजः पञ्चदशपर्वा (पर्णः) स सोम इव दीप्यते वर्धते च।

[चरक. चि. अ. १।७]

महर्षि दयानंद सामवेद का भाष्य तो नहीं लिख पाए किन्तु उनके द्वारा लिखित वेदभाष्यों एवं इतर ग्रन्थों के आधार पर सोम के नीचे लिखे अर्थ मिलते हैं।—

यजु. २६-२५, ऋ. ४.२८-१, १-९१-१८ ऐश्वर्ययुक्त विद्वज्जन।
ऋ. ६-४४-२४—सुवति चराचरं जगत्सम्बुद्धौ जगदीश्वर

यजु. ३-५६—सूयन्ते रसा यस्मात् सोमोषधिराजः।
यजु. ४-३७—विद्या सम्पादक विद्वान्।
यजु. १२-११२, ८.५०—चन्द्र इव वर्तमान (राजपुरुष, विद्वान् वा)। ईश्वर
आर्याभि. १-३८—।। रोगनाशकराजन्।
यजु. ३४-२२, ऋ. १-४३-९—
ऋ. १-९१-१६—वीर्यवत्तम विद्वज्जन।
ऋ. १-९१-२३—सर्वविद्यायुक्त सेनाध्यक्ष।
ऋ. १-९१-२२, १-९१-३—सोम्यगुणप्रापक ईश्वर।
ऋ. १-९१-८—सर्व सुहृद् सौहार्दप्रद वा (ईश्वर, विद्वान् वा)
यजु. ५-३९—सभाध्यक्ष, राजन्।
ऋ. १-९१-११; १-४३-७—वैद्य।
यजु. १९-५४—सुसन्तान। यजु. ७-१४ शिष्य।
यजु. ८-२६—गृहस्थ जन। यजु. ९.३१ न्यायाधीश।
यजु. ७-२१—सभासद् प्रजाजनो वा। यजु. १७-४० प्रेरक अध्यक्ष
यजु. ३४-२१—उपदेशक, अध्यापक। २९-४९ औषधिराज।
ऋ. १-६-१९-५ आर्याभि. १-१९ प्राणस्वरूप शान्तात्मा ईश्वर।
ऋ. ९-११३-४ संस्कारविधि—संन्यासी।
ऋ. ६-३४-४—सज्जन। ऋ. १-४७-१, १-१८-४/५ औषधिरस।
ऋ. १-१३६-४—न्याय। ऋ. ३-६२-४ चन्द्र।
ऋग्वेदादि भा. भू. ऋ. ८-३-२७-५ विवाहित प्रथम पति।

सारांश—

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक साहित्य में सोम के विभिन्न अर्थ हैं यथा—(१) आनन्द, (२) अमृत, (३) जल (४) चन्द्रमा, (५) ज्ञान, (६) आत्मिक शक्ति, (७) ऐश्वर्य, (८) प्रभुता, (९) सैन्यशक्ति, (१०) सौन्दर्य, (११) प्रसिद्धि, (१२) यश, (१३) भोजन, (१४) श्वास, (१५) वीर्य, (१६) सत्य, (१७) रस, (१८) दुग्ध, (१९) आतिथ्य, (२०) आनन्दयुक्त परमेश्वर, (२१) प्रभुभक्ति, (२२) दैवीरक्षक शरीर, (२३) आध्यात्मिक प्रसन्नता, (२४) न्याय, (२५) रश्मि, (२६) शिष्य, (२७) यजमान, (२८) वायु, (२९) पशु, (३०) दधि—इत्यादि सभी सोम हैं।

अन्त में,—

संक्षेपतः सोम एक नशा है किन्तु यह शारीरिक अर्थ में नशा पैदा नहीं करता है और न कोई रासायनिक रचना है। यह एक योगी द्वारा प्राप्त अवर्णनीय

आध्यात्मिक आनन्दानुभूति है। सोम प्राप्ति कर योगी मदमस्त सा लगता है। वह परमात्मा से मिलन की अन्तिम सीढ़ी पर पहुंच जाता है जिसे विशोका ज्योतिष्मती कहते हैं। आध्यात्मिक आनन्द भी एक सर्वश्रेष्ठ नशा ही है। किन्तु सोमावस्था की तुलना में भौतिकावस्था सब फीकी है। जैसा कि सामवेद कहता है सोम बुद्धि को प्रेरणा देता है और सुमार्ग की ओर अग्रसर करता है। यह दिव्य ज्ञान का स्रोत है। सोम इस प्रकार जीवन का सार है। सोम ऋत अथवा आध्यात्मिक सत्य का आधार है। इसके सामने भौतिक जीवन तुच्छ लगता है। सोम सर्वोच्च प्रज्ञा का दाता है। ऋतंभरा प्रज्ञा इसी के द्वारा आती है। सोम के लिए हमारा हृदय एक पात्र के समान है। एक योगी के हृदय से आनन्द का रस उसी प्रकार प्रवाहित होता रहता है जैसा कि सोमलता या सोम के पौधे में रस प्रवाहित होता हो। हृदय की कली स्फुटित हो जाती है। इसे सोम रश्मि प्रकाशित कर देती है। सोम की यह दिव्य ज्योति अवर्णनीय है। यह पवित्र और निर्मल है। आध्यात्मिक अनुभूति के रूप में सोमभक्ति, प्रार्थना, और योगाभ्यास का अन्तिम परिणाम है। यह वह अमृत है जो शरीर को नशीला नहीं बनाता है, किन्तु आत्मा को ऊंचा उठाता है। सोम जीवन का जीवन है। सोमपान करने वाला पाप से बचता है। वह वास्तविक अस्तित्व, वास्तविक जीवन को पहचान लेता है। यों कह सकते हैं कि सोम देव अथवा विद्वानों का भोजन है। योगी का सोम लक्ष्य है। नास्तिक इसे संहिता के अर्थों में बढ़ा चढ़ा कर कह सकता है किन्तु सामवेद के उदाहरणों से सोम का यथार्थ स्वरूप स्पष्ट प्रकट होने और उसे समझने में हमें पर्याप्त सहायता मिलती है। जिन्होंने वेद नहीं समझे हैं उन्होंने ही इसे सुरा (शराब) समझने की भयंकर भूल की और वे स्वयं भ्रमित हुए हैं और फिर "अन्धेन नीयमानाः यथान्धाः" चरितार्थ हो रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. सामवेद भाष्य—

(१) स्वामी ब्रह्ममुनि,

(२) सार्वदेशिक सभा द्वारा प्रकाशित स्वामी तुलसीराम भाष्य

(३) श्रीचंद गुप्त द्वारा पवित्र सामवेद भाष्य

(४) स्वामी जगदीश्वरानन्द जी का सामवेद भाष्य

(५) स्वा. विद्यानन्द विदेह—सामवेद का अध्ययन

(६) स्वा. अच्युदानन्द (सामवेद शतकम्)

वैदिक सोम विमर्श

—डा. भवानीलाल भारतीय

वेदों में जिन देवताओं का वर्णन मिलता है, उनमें सोम भी एक प्रमुख देवता है। वस्तुतः मन्त्रगत वर्ण्य विषय को ही देवता कहा जाता है। ऋग्वेद का नवां मण्डल पूर्ण रूप से सोम को ही समर्पित है। इस मण्डल के १, २, ३ सूक्त हैं और ये सभी सोम की प्रशंसा करते हैं। वेदों में अन्यत्र भी इस देवता के सूक्त मिलते हैं। सामवेद का एक तिहाई अंश सोम का उल्लेख करता है। वेद के व्याख्या ग्रन्थों में भी सोम का विवेचन हुआ है और यह सिलसिला अवान्तर शास्त्र ग्रन्थों तक चला है। विचार का विषय यह है कि अन्ततः सोम क्या है? सामान्य पाठक सोम को एक ऐसी वनस्पति मानता है जिसे आर्यगण अपने यज्ञों में कूट, पीस तथा छान कर देवताओं के लिये अर्पित करते थे तथा यज्ञ कर्त्ता ऋत्विक एवं यजमानगण उसका पान करते थे। यज्ञों में सोम पान एक विशिष्ट विधि तथा इति कर्त्तव्य माना गया है।

व्याकरणिक दृष्टि से देखें तो सोम के साथ, निचोड़ने का भाव अनिवार्यतः जुड़ा हुआ है। कारकों की निम्न विभक्तियों में निचोड़ने की क्रिया प्रयुक्त होती है—

१. सुनोति यः स सोमः—जो सोम रस को निचोड़ता है। कर्त्ता
२. सूयते यः स सोमः—जिसको निचोड़ा जाता है—कर्म
३. सुनोति येन स सोमः—जिससे निचोड़ते हैं—करण
४. सुनोति यस्मिन् स सोमः—जिसमे निचोड़ता है—अधिकरण

यह तो सोम के व्याकरण से जुड़े प्रयोग हुए किन्तु वैदिक पदों के अर्थ ज्ञान के लिये आचार्य यास्क प्रणीत निरुक्त शास्त्र की सहायता आवश्यक है। निरुक्त में सोम का अनेकत्र उल्लेख हुआ है। वहां इसका निर्वचन इस प्रकार मिलता है—

ओषधिः सोमः सुनाते यदेनमभिषुण्वन्ति। ११।१।२

अर्थात् सोम औषधि है, कौन सी? जिसका रस निकाला जाता है। निश्चय ही यास्क ने सोम को एक औषधि बताया है और उसके लिये ऋग्वेद के नवें मण्डल के प्रथम मंत्र को प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया है—

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।
इन्द्राय पातवे सुतः ।। ९।१।१

हे सोम—तेजस्वी इन्द्र के लिये अत्यन्त स्वादिष्ट तथा प्रसन्नता देने वाला होकर रस धारा के साथ प्राप्त हो।

किन्तु यास्क सोम को वनस्पतिपरक स्थूल अर्थ देकर ही संतुष्ट नहीं हैं। है। वे इसका अधिदैवत चन्द्रपरक अर्थ तथा अध्यात्मपरक अर्थ भी करते हैं। अधिदैवत अर्थ के लिये वे दशम मण्डल के ८५वें सूक्त का तीसरा मंत्र उद्धृत करते हैं—

सोमं मन्यते पपिवान् यत्संपिषन्त्योषधिम्।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन ।।

अर्थात् पीने वाला तो उस औषधि या लता को ही सोम समझता है जिसे पीस कर उसका रस पान किया जाता है किन्तु जिस सोम (चन्द्रमा) को विद्वान् लोग जानते हैं, उसे न कोई खाता है और न पीता है। अध्यात्मपक्ष में सोम परमात्मा का वाचक है क्योंकि इस सर्वोच्च ब्रह्म को तत्त्वज्ञ ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण ही जानते हैं, साधारण मर्त्य (मनुष्य) तो पीने वाली औषधि को ही सोम समझते हैं।

निश्चय ही सोम नामक के कोई लता भी थी, जिसका रस प्राप्त करने के लिये यज्ञों में लाया जाता था। उसके रस को दूध में मिला कर उसका पान भी किया जाता था। आज उस वनस्पति को प्राप्त करना दुष्कर हो गया है। ऐसा नहीं कि प्राचीन समय में भी वह सर्वथा सुलभ ही थी। सोम लता तथा उसके पत्तों के विषय में निरुक्त में कुछ श्लोक मिलते हैं तथा यह भी उल्लेख है कि यह लता हिमालय, अर्बुद (आबू) सह्य, महेन्द्र, मलय तथा विंध्य आदि पर्वतों में पाई जाती थी, किन्तु उसके न मिलने पर विकल्प के रूप में शतपथ ब्राह्मण में कुछ अन्य वनस्पतियों के प्रयोग की भी चर्चा आई है। वनस्पति रूप में सोम की चर्चा चरक तथा सुश्रुत आदि आयुर्वेद के ग्रन्थों में भी मिलती है। वैदिक रीडर के लेखक प्रो. एन ए. मैकडोनल ने सोम के विषय में लिखा है—

"The soma juice which is in toxicating, is frequently termed madhu or sweet draught, but offehest called indu-the bright drop."
अर्थात् सोम मदकारी है जिसे प्राय: मधु (मीठा) कहा जाता है, किन्तु इस इन्दु (उज्ज्वल बिन्दु) भी कहा गया है। जिस सोम को इन्द्रादि देवों के पानार्थ तैयार किया जाता है उसे शतपथ ब्राह्मण में बभ्रु तथा अरुण भी कहा है—सोमो वै बभ्रु (शतपथ-३-१-४-५) तथा 'बभ्रुरि व हि सोमो राजा' (शतपथ—१।६ ३।३)

उपर्युक्त प्रमाणों से सोम का विशेषण बभ्रु मान लिया गया है। शिवराम आप्टे के संस्कृत कोश में 'बभ्रु' का अर्थ गहरा भूरा तथा लालिमा युक्त भूरा किया गया है। कालिदास के कुमार सम्भव में वल्कल वस्त्र को बभ्रु कहा गया है—

बबन्ध बालारुण बभ्रु वल्कलम् (५।८२) उगते हुए सूर्य की लालिमा को करुणिमा कहा जाता है।

अनेक विद्वानों की धारणा है कि सोमलता नशीली होती थी। शतपथ में सोम को सुरा की भांति मादक कहा है—मदाय बाव सोमो मदाय सुरा—(शतपथ १२।७।३।१२) ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में मदिन्तमः, मद्यः, मदच्युत, मधुमन्तमः, देवमादनः, आदि विशेषण सोम के लिये प्रयुक्त हुए हैं। वेदभाष्य का सायण ने सोम को मादक मान कर ही मंत्रों की व्याख्या की है इसलिये लोगों को सोम के प्रति यह भ्रान्ति हुई कि वह तो मदिरा की भांति नशीला पदार्थ है। किन्तु शतपथ ने इसका निराकरण करते हुए दोनों को पृथक् माना है। यहां (शतपथ ५।२।१०) सोम को सत्य, श्री तथा ज्योति स्वरूप कहा है जब कि सुरा को 'अनृतपाप्मा' तथा तम. स्वरूप बताया है। सोम तो यज्ञ में डाली जाने वाली श्रेष्ठ आहुति है जब कि सुरा को अन्न का मल कहा जाता है। ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में सोम के लिये ऐसे विशेषणों का प्रयोग हुआ है जो पवित्रता के द्योतक हैं, तथा शुचि जातः (९।९।३) शुचिः (९।७४।३) पुनानः (९।९६।१५) आदि। वस्तुतः सोम सात्विक गुणोपेता एक वनस्पति थी जिसके रस को पीने वाले को वह शक्ति स्फूर्ति, दीप्ति तथा प्रफुल्लता प्रदान करती है। चाहे आर्थर एन्थनी मैकडानल ने सोम को मादक (In toxicating) ही कहा किन्तु वह यह भी स्वीकार करता है कि सोम में शक्ति प्रदान करने का गुण है जिससे महा बलवान् इन्द्र वृत्र को परास्त करने का सामर्थ्य प्राप्त करता है।

That Soma inivgorates Indra for fight with Vritra is mentioned in innumerable passages (Vedic Reader P. 154) सोम से विपरीत सुरा मनुष्यों का तामसी प्रवृत्तियों को जागृत कराती है तथा उन्हें परस्पर लड़ाती है। यही बात ऋग्वेद में इस प्रकार कही गई है—

युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम् (८।२।१२)

पाणिनि के धातु पाठ के अनुसार 'मद' धातु का अर्थ तृप्तिदायक तथा हर्ष वर्धक भी होता है। इसलिये सोमपान को तृप्तिकारक तथा उत्साह एवं प्रसन्नता का वर्धक मानना उचित है। आचार्य सुश्रुत ने सोमलता का वर्णन करते हुए लिखा।

सर्वेषामेव सोमानां पत्राणि दशपञ्च च।
तानि शुक्ले च कृष्णो च जायन्ते च पतन्ति च ।।

अर्थात् सोमलता में पन्द्रह पत्ते होते हैं जो शुक्ल पक्ष में एक एक कर निकलते हैं तथा कृष्ण पक्ष में एक एक कर गिर जाते हैं। निरुक्त भाष्यकार

पं. चन्द्रमणि विद्यालंकार के अनुसार पर्याप्त समय पूर्व डा. रोक्सबरो ने हिमालय प्रदेश में सोम लता की खोज की थी तथा उसके स्वाद को नशीला न बताकर शिकंजी की भांति स्वादु बताया था। ऋग्वेद के नवों मण्डल में आये सोम सूक्तों में सोम के लिये 'मत्सर' विशेषण का प्रायः प्रयोग मिलता है। सायण ने इसका अर्थ मादकता उत्पन्न करने वाला किया है जब कि निरुक्त ने गोभिः श्रीणीत मत्सर (ऋग्वेद ९।४६।४) की व्याख्या में मत्सर का अर्थ तृप्तिकारक किया है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वैदिक यज्ञों में प्रयुक्त होने वाली सोम औषधि आयु, मेधा, हर्ष और प्रफुल्लता को बढ़ाने वाली कोई वनस्पति थी।

तथापि यह स्वीकार करना होगा कि सोम का प्रयोग केवल किसी औषधि या लता के अर्थ में ही नहीं हुआ है। सोमयाग नामक एक श्रौत यज्ञ का शतपथ में विस्तार पूर्वक विवेचन मिलता है। ऋषि दयानन्द ने इस याग में विनियुक्त याजुष् मंत्रों की व्याख्या करते हुए इन्हें विद्यादान परक माना है। वेदों के महान् विद्वान् स्वामी समर्पणानन्द जी (पं. बुद्धदेव विद्यालंकार) ने सोमयाग में निहित प्रतीकों को स्पष्ट किया है। उन्हीं के द्वारा निर्दिष्ट व्याख्या पद्धति का अनुसरण करते हुए स्व. डा. वेदपाल सुनीथ तथा डा. सोमदेव शतांशु ने भी सोमयाग को परिभाषित किया है तथा इस याग में अनुष्ठीयमान क्रियाओं के तत्त्वार्थ का स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है। यों तो सोमयाग का उल्लेख ऐतरेय तथा ताण्ड्य महाब्राह्मण में भी हुआ है किन्तु शतपथ ब्राह्मण में इसका विवेचन विशिष्टता लिये है। इसे चार भागों में बांटा गया है—अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी तथा अतिरात्र। सोमयाग के उक्त व्याख्याकारों का मत है कि इस वृहत याग के माध्यम से वेदों में निहित बहुविध विज्ञान का प्रकाशन किया है। साथ ही ब्राह्मणकार यह भी बताना चाहते हैं कि पशु सदृश बालक को उसे पढ़ाने वाले आचार्य अपने ज्ञान से आप्यायित एवं आलोकित कर कैसे पूर्णकला युक्त, चन्द्रमा के तुल्य सोम संज्ञक बना देते हैं। इसी प्रसंग में उक्त व्याख्याकारों ने सोम क्रय, गन्धर्वों द्वारा सोमहरण, द्युलोक में सोम का निवास, सोम सवन, तथा सोमरस पान आदि याज्ञिक क्रियाओं के रहस्य को स्पष्ट किया है।

वैदिक वाङ्मय में सोम विभिन्न भूमिकाओं में आता है। स्नातक बन कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाला सुयोग्य युवक भी सोम है। वह गृहस्थ के दायित्व का वहन करते रहने पर भी यज्ञ अर्थात् परोपकार के लिये समर्पित है। इसलिये शतपथ उसे राजा और प्रजापति कहता है। सोमो वै राजा यज्ञः प्रजापतिः (१२।१-१) यजुर्वेद में जहां राजा के राज्याभिषेक का प्रसंग आता है वहां उसे सिंहासनारूढ़ करते हुए ऋत्विक्गण उस प्रजापालक नरेश को समस्त प्रजाओं का स्वामी घोषित करते है! किन्तु सोम संज्ञक परमात्मा अथवा वेदज्ञ ब्राह्मण सोम को

अपना राजा स्वीकारते हैं—एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा (१०।१८) ऋग्वेद में सोम को क्रान्तदर्शी कवि कहा गया है—सुवासो यादि कवि—क्रतुः (९।९।१) इसी मण्डल में उसे सम्बोधन कर कहा गया है—

त्व सोम पवमानो विश्वानिदुरितानितर ।

कविः सीद बर्हिणीः ।९।५९।३

अर्थात् हे सोम, यह आसन आपके लिये है । यहाँ बैठो, तुम हमें पवित्र करने वाले (पवमान) हो । हमारे सब दुरितों(दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुःख) को दूर करो । इसी तरह वेदों में सोम के लिये जो अत्यन्त उत्कृष्ट और श्रेष्ठ विशेषण प्रयुक्त हुए हैं उन्हें ध्यान में रक्खें तो ज्ञात होगा कि सोम केवल लता या औषधि ही नहीं है । ऋग्वेद के नवें मण्डल में उसे विचक्षण विपश्चित, ऋषि, विप्र, ब्रह्म मनीषी, वाचस्पति, स्वर्विद्, विद्वान्, वक्ता, ब्रह्मणस्पति जैसे उदात्त एवं महनीय विशेषणों से सम्बोधित किया गया है । वस्तुतः सोम तो परमात्मा का ही वाचक है जिसके भक्ति रस का पान कर मर्त्य प्राणी भी अमृत हो जाता है, परम ज्योति को प्राप्त करता है, देवों को जान लेता है । अराति (दुष्टगण) उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते । यही वैदिक सोम है, जिसका उल्लेख निम्न ऋचा में हुआ है—

अपाम सोमं अमृता अभूमागन्म ज्योति रविदाम देवान् ।

(ऋग्वेद—८।४८।३)

८।४२३ नन्दनवन, जोधपुर

Journal of Intern ational Dayananda Veda-Peetha Vol VII. No. 1 April 1994. pp 63-71

THE DESCENT OF SOMA

—Dr. Prem Chand Shridhar

The legend of the descent of Soma, as Abel Bergaigne, puts it goes as under :

The terrestrial Soma has had its origin in heaven. The milk of Soma was brought from heaven. According to Rg. Veda IX. 61.10[1]. Soma was bomhigh up in a plant, and inhabiting in heaven was received by the earth, Somas were poured down on the surface of the earth from heaven and atmosphere. It is evidently Soma which has been called both a plant and a "drop fallen" Bergaigne is of the opinion that verses IX. 12.7[2] and 8[3] can be understood so that in the former there is an illusion of the descent of Soma and that in the latter to his return to heaven.

Bergaine describes the legend of the return of Soma to heaven or it can be called the myths of another life. He says, "Descended from heaven with the waters of rain, with which he is combined, Soma mounts up there as a consequences of sacrifice. It must be remembered first of all that the two modes how gods participate in sacrifice have been described in connection with the ascent of Agni to Heaven. Very often the gods have been conceived as coming and seating themselves on the sacrificial grass."[4]

Commenting on this legend Bergaigne elucidates a point, in the following quote :

"In fact the Somas offered to are Vayu called in 1.13.4.2 abhidyāvah" directed towards heavn", with which we might compare the epithet Urdhva "upright", given to Soma, shining in sacrifice, IX.98.3[5] Soma, as a matter of

1. उच्चा ते जातमन्धसो दिवि षद्भूम्या ददे । ऋ. ९,६१,१०
   उग्रं शर्म महि श्रवः ।।
2. नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धीनामन्तः सबर्दुघः । हिन्वानो मानुषा युगा ।। ऋ. ९,१२,७
3. अभिप्रिया दिवस्पदा सोमो हिन्वानो अर्षति । विप्रस्य धारया कविः ।। ऋ. ९,१२,८
4. V.R. Vol. I. p. 190,
5. परिष्य सुवानो अक्षा इन्दुरव्ये मदच्युतः ।
   धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा नेति गव्ययुः ।। ऋ. ९,९८,३

fact, even when he is drunk by gods on the altar itself, does not far that reason fail to retum to heaven."[1]

The myth represents the terrestrial Soma, as ascending into the atmosphere, life fire himself, in order to assume there are form of the Sun. The union of the terrestrial Soma with the Sun is indicated to 'go neighing towards the rays of the Sun.'

On the meaning of Soma

Bergaigne believes that "This word is first of all an adjective, meaning immortal, and is used for some of the elements of nature such as fire, light and waters, of the gods representing them or presiding over them, and lastly of men who have succeeded in aṭṭaining the abode of the Gods. In many of the instances the nectar amrta may be understood in the sense of 'immortality' like the abstract noun amṛtatva.

And thus, summing up about this Soma, the amrta Bergaigne says, "I believe that amrta, as a material element, is the immortal essence of Soma contained in the heavenly waters, with which Soma is identical, as much by its origin as by its effects. It is this immortal essence which when the mortal body of man assimilates it, transforms it and makes it also immortal.

Monier William's View

Soma, according to M. Monier Williams, is, juice extract, (esp.) the juice of Soma plant, (also the Soma plant itself) said to be the climbing plant Sarcostema Viminalis or Asclepias Acida, the stalks (amśu) of whlch werc pressed between stones (adri) by the priests, then sprinkled with water, and purified in a strainer (pavitra)."[2]

According to some scholars "The celestial Soma has been given the same origin as the terrestial Soma.

Now, before going in detail of the legend and commenting on the subject concerned, we must understand the different forms of Soma, its celestial or terrestrial origin.

1. V.R. vol. I. p. 191.
2. S.E.D. p. 1249.

Some say, Soma is a spirituous liquor, very often mentioned also under the name Indu, being derived from a plant. According to the expression of which is milked with stones in a receptacle, which it appears to have been called dhisanā. Once pressed out, the sap of the plant has to be passed through a sieve, where it is purified, this sieve is made of the wool of ewe.

Griswold's View on Soma

Griswold is of the opinion that Soma is the deified sacrificial God and maintains that the three ritualistic gods Agni, Brhaspati and Soma. the last is, in one respect at least, the most important, since the Soma sacrifice furnished the centre and frame-work for the whole Ṛgvedic ritual. The Vedic scholar accepts the heavenly origin of Soma and says that like Agni Soma came from heaven. he quotes the verse from R. V. 1.93.6[1] to support his view. While translating the verse, Griswold finds some mythological and metaphorical meaning behind the words Matriśvān and Śyena. He has no hesitation in accepting eagle as the lighting, one of the synonyms for Agni.

Max Muller on Soma

Max Muller points out, "In some verses Parjanya seems to step into place of Dyaus, the sky, and Prithvi, the earth, is his wife. In other places, however, he is the son of Dyaus or the sky, though no thought is given in that early stage to the fact that thus Parjanya might seem to be the husband of his mother."[2]

Macdonell's View

According to Macdonell, Soma is Indu, invoked to come to the sacrifice and receive the offerings, on the strewn grass. The ninth book mainly consists of incantations sung over the tangible Soma while it is pressed by the stones, flows through the woollen strainer into the wooden vats, in which it is finally offered on a litter of grass to the gods as a beverage."[3]

---

1. अन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रे ।
   अग्निषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरूं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥ ऋ, १,९३,९
2. V.p.111
3. V.M.p. 104

Soma has been often called 'amrta' because of its mysterious exhihbrating and invigorating action surpassing that of ordinary food or drink and promoting to deeds beyond the natural powers, Rgveda 1.84.4, IX. 85.2, IX. 109. 15 has been quoted.[1 3]

According to Macdonell it is mythologically called amrta, the draught of immortality.

Thus most of the western scholars hold that nearly all the hymns of (IXth book) are addressed to the deified Soma juice, or to Soma, or Indu, the Moon, who as containing the celestial nectar, the drink of the Gods, is identfied with the Soma-plant and its exhilerating juice.

As the Moon-God pours down his ambrosial rain through the sieve of heaven, he is addressed and worshipped as pavamāna (self purifying), represented by the Soma juice as it undergoes purification by flowing through thc wool which is used as filter or strainer.

According to Satapatha Brahmana[4]

Thou art a Brahmacārin, he says and thus commits him to Brahmana.

'Sip water'-water, doubtless, means ambrosia : sip ambrosio''[5]

Thus Satapatha Brahmana directly identifies the ambrosia with water.

According to Aitareya Brahmana

In the Aitareya Brāhmana, God Soma has been described as the king, the embryo of sky and earth and by sacrifice wealth, good things, strength and prosperity have been saught by the sacrificer. Soma the king is the embryo of the Sky and Earth; in that, (saying) sought by sacrifice is wealth sought are good things, for strength, for prosperity, holy order to the speakers of holy order, homage to sky, homage to earth. They make

1. इममिन्द्र सुतं पिब्र ज्येष्ठमर्त्यं मदम् ।
   शुक्रस्य न्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्ह सादने ।: ऋ. १.८४.४
2. दक्षो देवानामसि हि प्रियो मदः ॥ ऋ. XI, ८५,२
3. पिबल्यस्य विश्वे देवासो गोभिः श्रीतस्य नृभिः सृतस्य ॥ ऋ. XI, १०९,१५
4. ब्राह्मण ऐवैनम तदपरिद्दात्यापो ऽसानेत्यामृतं वाऽपोऽमृतं शानीत्येवैनम् ॥
   श. प. ब्रा. ११.५.४.५
5. S. P., Vol. p 87.

(their amends) on the strew, verily thus they pay homage to sky and earth: moreover, they cause them to grow.:[1]

Soma as expounded by Vedic Seers

Soma has been expounded by the Vedic seers as 'deva' in the hymns of IX Mandala of Ṛgveda. This word as stands in the Vedic verses is for the concept of Vedic vision of life, which expresses the eternal truth dawned in the mind, possessed with all divinity beyond the limitiations of human Ego. It only symbolises the deep-rooted fundamental principles of eternal truths of cosmic as well as of human existence.

It has been emphasized that the words that were used by the seers to symbolize the 'devās', their divine visions or the poetic arche-types are known as the 'devatās' of Vedic hymns. Agni, Indra, Vāyu, Mitra, Varuna, Soma, Visṇu, Savitṛ, Bṛhaspati, Usā, Rātri, Saraswati, Ilā, Bhāratī, Āpaḥ, Ulukhalmusala and Yupā etc. are Devatās by virtue of their being employed by the Vedic seers to convey their poetic insights which are founded on the ground of impersonal understanding which relates to the deeper conscience of the mankind as a whole.

Prayer to pavamāna in Ṛgveda:[2]

"O Pavamāna, place me in that deathless,
undecaying world.
Wherein the light of the heaven is set, and everlasting lustre shines.
Flow, Indu flow for Indra's sake."

Thus, Soma purifies, (he who is) the generator of hymns, the generator of the sky, the generator of the earth, the generator of Agni, the generator os Sūrya, the generator of Indra and generator of Visṇu, comments the author of the Nirukta-Pariśiṣta. It shows he was perfectly aware of the nature of the myth of the descent of Soma.

Swami Dayanads' Conception of Soma

But Swami Dayanand is his translation of the Vedās has given quite different meanings is the different contexts of the hymns. According to him

1. Ajt. Brā., p. 108
2. यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिल्लोके स्वर्हितम् ।
तस्मिन्मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परिस्रव ।। ऋ. IX. ११३.७

Soma stands for wisemen with all prosperity, also Ishwar (Suvati Carācarm Jagat tatsambudhau jagadiśvara or suyante rasā yasmāt sa somauṣadhirajaḥ) Indra = rājan endowed with all prosperity."[1]

Soma has also been explained as an inspirer of all prosperity and the guard, one who extracts the essence of the Soma plant, full of life and peace (Iśvarah).

Thus 'Soma' can be accepted as having different meanings in different contexts of the hymns. It can be the medicinal plant with energetic juice to be extracted for the Soma sacrifice as explained in the Brāhmnas. Soma is Ishwar, the creator, one who bestows all peace and prosperity: a king, with all prosperity and power, the lord protector; a deity presiding over Rasa; the essential delight; the lord of immortal Beatitude. The Gods betake themselves to the sap of delight that is the essential element of all beings in creation.

Kapāli Shastri about Soma

In his Ṛgvedabhāṣyabhūmikā, known as "Sidhān jana Ṛksamhitā bhāsya" Kapāli Shastri says, "The nectar by which they attain immortality. That is why the yajmana extracts the rasa and offers it to the Gods whose food is amrata, nectar, the essence, the rasa of all the knowledge, dynamism and vitality indicated by the term Soma. And this immortal delight known as Soma becomes the food of Gods."[2]

The eater of the food, be it noted, is of course the Agni, the mouth of all the Gods Kapāli Shastri has clarified this idea that "Soma is the food, Agni is the eater of the food. The significance passages such as" Agni is all the Gods, Soma is all the Gods" is clear in its import when read in the esoteric sense.

J N Vedalankar Explains

We quote below only two verses of IXth mandala of Ṛgveda[3 4] from "Jyotisām-Jyotih" with their philosophical meanings and the inner essence as translated and explained by Pt. J. N. Vedalankar.

---

2. D.V.K. p, 1073.
1. R.B.B, p. 57.
2. स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ।। ऋ. IX. 1.1
3. पुनाति ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता । बारेण शश्वता तना ।। ऋ. IX. 1.6

"O sap delight flowing from God, pour in me and purify me, with your most delicious and rapturous constant movement. Thou has been pressed out for my soul to drink, for the soul which has attained the status of Indra by full conquest of senses." or else, o sap of devotion, thou hast been pressed out for the God Indra, the Lord of the divine mind to drink, flow and purify all of us with sweetest and most rapturous stream of devotion."

"O Soma, we daily move towards you only, movement towards you and serving you is our only business and goal All our hopes, desires and aspirations ıeside in you only. they depend on you on you only."

Philosophy of the Descent of Soma

"The streams of the divine consciousness, proceeding forward, impel and increase the Soma, the sap of delight. The sap of Soma is purified by a sieve, which is the God himseif, surrounded by His truth. Then, that Soma, the immortal essence of delight, maintainer of the the three forces of bady, life and mind and energising them, dispels all our pain and sufferings and destroys all adverse forces."[1]

M.P. Pandit has summed up the whole Soma Vedic philosophy as under :

He says, "The principle of Existence, even here on earth, is Ānanda, Bliss From Ananda says the scripture, all is born, by Ananda all is sustained, in Ananda all departs. This Ananda in seed-form is there involved in all life and ceaselessly urges to be manifested. Soma, the God head of Ananda, is there set within each living form by the divine progenitors: it is the child to be born, the truth to be lived by each individual life. The full meaning existence is realised only when this Intrinsic Ananada is brought out and developed into its full figure in evolving life."[2]

Sri Aurobindo's Philosophical View

Sri Aurobindo holds that Soma is the Lord of the wine delight, the wine of immortality and says, "Like Agni he is found in the plants, the growth of earth, and in watrers. The Soma-wine used in the external

1. J.J. p. 167
2. W. V. p. 82.

sacrifce is the symyol of this wine of delight. It is pressed out by the pressing-stone (adrigravan) which has a close symbolic connection with the thunderbolt, the formed electric force of Indra also calley adri."[1]

Soma is the Lord of Ānanda, is the true creator who possess the soui and brings out of it a divine creation. For him the mind and heart, enlightened, have been formed into a purifying instrument freed from all narrowness and duality the consciousness in it has been extended widely to receive the full flow of the sense-life and mind-life and turn into pure delight of the true existence, the divine, the immortal Ānanda.

Prof. V. S. Aggrawal about Soma

In his lecture on "Soma-Vidya" the learned scholar has wonderfully explained the whole mystry and says, "Soma at different levels is all three, Viz. gross food (Anna), vitality (Prana) and Bliss (Ananda). It is the source of three different forms of energy. The Ṛsis, therefore, speak of soma as seed or the fecundating energy of stallion or cosmic horse, that is yoked to the cosmic car as well as to that of human body. That horse is Agni and Soma is vitalising principle or seed."[2]

He quotes from the Rgveda:[3]

And expounding the above further he says, "The horse and the seed are identical principles and both were born from chunning of the primeval ocean. The cosmos was created from the seed of the universal horse. i. e. the sun, or Kala or Samvatsara, and is being continued by it. Such is the unity of Agni and Soma."[4]

Conclusion

To conclude, Soma to us, is not merely a plant found on the mountain of Mujāwat and pressed out for drinking as an intoxicator as has been explained and taken by many scholars of the West as well as of the East. To us, it is not a drink to be presented to the warrior the Indra after the

1. S. V. p, 342.
2. V. I. p. 65.
3. इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥ ऋ. १.१६४.३५
4. V.I. p. 65

ritual of Soma sacrifice, to fight battles for the ancient Āryans as has been mentioned, who hold to explain every word of the Veda as the history of Vedic Age. We refute all these theories and reject them categorically because they have failed to reach the depth of true meaning of the verses, they contain, and have only touched their surface.

The fact is that Soma, as Vedic deity represents the Supreme dappled Bull, a generator of the world of becoming Soma at different levels is all three viz. grass food (Anna), Vitality (Prana) and Bliss (Ananda). Soma to us, is all delight and drink of immortality. The true creator who possesses the soul and brings out of it a divine existence in the world, and maintains it. Every word in the verses is symbolic expresses itself in metaphorical language which certainly requires the mystic approach and understanding.

Thus, we peep through the real philosophy that reflects the Vedic deity "Soma". It is this Soma in real seed-form involved throghout the Manifestation of llfe and the bliss, which is the essence of Soma, that is the soul of all existence on earth. In fact, the Lord Divine manifests Himself in the form of Soma, creatlng and evolving the whole creation out of it. It is in this right perspective, the concept of Soma in the mantras should be studied.

Note : This article is based on the self thesis approved for the award of Ph. D. degree from University of Delhi, 1992.

BIBLIOGRAPHY

1. Ṛgveda Samhita
2. Aitereya Brāhmana - Translation by Keith, A. B.
3. Śatapatha Brahmanā - Translation by Eggling J.
4. Aurobindo Sri - On the Veda.
   - The Secret of the Veda.
5. Abel Bergaigne - Vedic Religion.
6. Aggrawal V.S. - Vedic Lectures.

7.	Griswold H. D.	-	Religion of the Ṛgveda
8.	Kapāli Shastri, T. V.	-	Lights on the Veda.
		-	Rgvedābhasyabhūmikā.
9.	Keith, A.B.	-	Religion and Philosophy of
		-	the Vedas.
10.	Macdonell, A.A.	-	Vedic Mythology.
11.	Pandit. M. P.	-	Mystic Approach to the Veda.
12.	Svami Dayanand	-	Right Approach to the Vedas.
		-	Dayanand Vedic Kosh.
13.	Vedalankar Jagan Nath	-	Jyotisām Jyotih.
14.	William. M.M.	-	Sanskrit English Dictonary.

वेद गोष्ठी के निबन्ध

सद्भावी विद्वानों के सहयोग से अन्तर्राष्ट्रीय दयानन्द वेदपीठ, दिल्ली तथा अनुसंधान विभाग परोपकारिणी सभा अजमेर के संयुक्त तत्वावधान में प्रतिवर्ष ऋषि मेले के अवसर पर वेद गोष्ठी का आयोजन किया जाता है। इस गोष्ठी में देश के अनेक भागों से पधारे प्रख्यात वैदिक विद्वान् निर्धारित विषयों पर अपने खोजपूर्ण विचार प्रस्तुत करते हैं। इनमें से चुने हुए शोध पत्र परोपकारी व वेदपीठ की शोध-पत्रिका व पुस्तक के माध्यम से प्रकाशित किये जाते हैं। जिसे वे लोग भी जो गोष्ठी में नहीं आ सकते लाभान्वित होते हैं। विद्वानों को भी इस विषय पर अधिक विचार करने का अवसर मिलता है।

गत दस वर्षों से गोष्ठी का आयोजन निरन्तर किया जा रहा है। अब तक निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार किया जा चुका है।

१.	ऋषिदयानन्द की वेदभाष्य शैली।	१२ नवम्बर १९८८
२.	वेद और कर्मकाण्डीय विनियोग।	५ नवम्बर १९८९
३.	अथर्ववेद समस्या और समाधान।	२७ नवम्बर १९९०
४.	वेद और विदेशी विद्वान्।	१६ नवम्बर १९९१
५.	वैदिक आख्यानों का वास्तविक स्वरूप।	१ नवम्बर १९९२
६.	वेदों के दार्शनिक विचार।	२८ नवम्बर १९९३
७.	सोम का वैदिक स्वरूप।	१२ नवम्बर १९९४
८.	पर्यावरण सदस्या का वैदिक समाधान।	३ नवम्बर १९९५
९.	वैदिक समाज व्यवस्था।	१ नवम्बर १९९६
१०.	वेद और राष्ट्र।	२४ अक्टूबर १९९७

सभी प्रकाशित निबन्धों का प्राप्ति स्थान
वैदिक पुस्तकालय दयानन्द आश्रम अजमेर

SPECIAL SUPPLEMENT

JOURNAL OF INTERNATIONAL DAYANANDA VEDAPEETHA

VOL. XI NO. 2 JUNE 1998.